स्व–निर्देशित अध्ययन सामग्री
Self-Instructional Learning Material

मास्टर ऑफ आर्ट्स (शिक्षाशास्त्र)

एम. ए. (शिक्षाशास्त्र)

प्रथम वर्ष

शिक्षा के सामाजिक आधार

(Sociological Foundation of Education)

(तृतीय प्रश्न पत्र)

दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत शिक्षा केन्द्र
महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय
चित्रकूट, सतना (म.प्र.) - 485334

शिक्षा के सामाजिक आधार
(Sociological Foundation of Education)

संस्करण–2016–17

प्रेरणा एवं मार्गदर्शन :
प्रो. नरेश चन्द्र गौतम
कुलपति
महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

लेखक :
डॉ. मनीष दुबे
प्रवक्ता
व्ही.एस.एस.डी. (पी.जी.) कॉलेज
कानपुर – 208024

सम्पर्क सूत्र :
निदेशक, दूरवर्ती शिक्षा
दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत शिक्षा केन्द्र
महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)
दूरभाष– 07670–265460, इ–मेल– distance.gramodaya@gmail.com, website: www.mgcgvchitrakoot.com

प्रकाशक :
कुलसचिव
महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

कापीराइट © : महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

आभार : यह अध्ययन सामग्री संबंधित पाठ्यक्रम और विषय के लिए विशेषज्ञों द्वारा तैयार की गई है। अध्ययन सामग्री को सरल, सुरुचिपूर्ण और बोधगम्य बनाने की दृष्टि से अनेक स्रोतों से प्रेरणा, संदर्भ और सामग्री ली गई है। सभी के प्रति आभार। अध्ययन सामग्री में व्यक्त विचार लेखक के अपने हैं। विश्वविद्यालय का इससे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

संदेश

महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय की स्थापना मध्यप्रदेश शासन द्वारा एक पृथक अधिनियम से 1991 में सुप्रसिद्ध समाजसेवी पद्मविभूषण नानाजी देशमुख के प्रेरणा और प्रयासों से चित्रकूट में मंदाकिनी के तट पर हुई। विश्वविद्यालय का प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण विकास के लिए आवश्यक मानव संसाधन तैयार करना है। विगत 25 वर्षों की समर्पित सेवाओं में विश्वविद्यालय ने ज्ञान–विज्ञान के विविध आयामों पर अपने शिक्षा, शोध, प्रशिक्षण और प्रसार कार्यों से छाप छोड़ी है।

ग्रामीण क्षेत्र में संसाधनों के अभाव तथा सामाजिक–पारिवारिक परिस्थितियों के कारण निरंतरता से अध्ययन करने में बाधायें आती हैं। विश्वविद्यालय ने इस समस्या के समाधान के लिए गुणवत्तायुक्त दूरवर्ती शिक्षा को प्रत्येक ग्रामीण के घर–आँगन तक पहुँचाने का संकल्प लिया है। विश्वविद्यालय का दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत शिक्षा केन्द्र इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सतत् प्रयत्नशील है।

मुझे प्रसन्नता है कि दूरवर्ती शिक्षा के विद्यार्थियों को स्वनिर्देशित अध्ययन सामग्री मुद्रित और व्यवस्थित रूप में पहुँचाये जाने का यह प्रयास न सिर्फ दूरवर्ती शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ायेगा बल्कि छात्रों को गहराई से अध्ययन करने की दिशा में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

प्रो. नरेश चन्द्र गौतम
कुलपति

शिक्षा के सामाजिक आधार
(Sociological Foundation of Education)

यूनिट - 1 : समाज और शिक्षा

भारतीय समाज का शिक्षा पर प्रभाव

यूनिट - 2 : समूह गति-विज्ञान और शिक्षा

नगरीकरण के शैक्षिक निहितार्थ

भारतीय संदर्भ में आधुनिकीकरण एवं शिक्षा

यूनिट - 3 : संस्कृति

सांस्कृतिक परिवर्तन और शिक्षा

एकीकृत मानवतावाद

यूनिट - 4 : शिक्षा में सामाजिक सिद्धान्त

शिक्षा की आर्थिक उपादेयता

यूनिट - 5 : प्रजातन्त्र के सन्दर्भ में शिक्षा

राष्ट्रीयता तथा शिक्षा

राष्ट्रीयता की शिक्षा के लाभ

राष्ट्रीय एकता के विकास में बाधायें

यूनिट – 1

NOTES

मनुष्य का समाज के साथ अनादिकाल से ही अटूट सम्बन्ध रहा है व्यक्तियों में मानवोचित गुणों, कर्तव्यों, आचरण–व्यवहार की शैली का ज्ञान समाज से ही प्राप्त होता है। इसी कारण समाज द्वारा विद्यालयों की स्थापना किया जाता है, जिसमें बालाकों को सामूहिक जीवन में करणीय कर्तव्यों एवं दायित्वों की जानकारी प्राप्त होती है। विद्यालय बालकों की शक्तियों तथा क्षमताओं को अनुशासित, संगठित तथा समन्वय युक्त बनाकर समाज के उत्कृष्ट नागरिक के रूप में स्थापित करता है। विद्यालय सामाजिक मान्यताओं के अनुकूल बालक को सामाजिक जीवन के साथ उसका सतत् और गतिशील सम्पर्क बनने हेतु उचित पृष्ठभूमि विर्निमित करता है। सामाजिक ज्ञान और श्रद्धा उत्पन्न करके व्यक्ति, समाज और शिक्षा के मध्य एक श्रृंखलाबद्ध सम्बन्ध स्थापित करता है। यह सम्बन्ध बहुत मजबूत होता है। इसी सम्बन्ध का अध्ययन करने के लिए शिक्षाविदों द्वारा समाजशास्त्र एवं शिक्षाशास्त्र विषय के अर्न्तगत एक नवीन शखा का अभ्युदय किया गया। इसी नवीन शाखा को शैक्षिक समाजशास्त्र के नाम से संज्ञापित किया गया है।

उन्नीसवीं सदी के पूर्व में व्यक्ति एवं समाज की आपसी घनिष्टता का व्यवस्थित अध्ययन करते हुए फ्रांसीसी दार्शनिक आगस्ट कामटे (1778–1857 ईस्वीं) ने समाजशास्त्र (Sociology) नामक एक नवीन विषय का सूत्रपात किया था। आगस्ट कामटे को इसी कारण समाजशास्त्र का जनक कहा जाता है। समाजशास्त्र अपनी सामाजिकतावादी प्रवृत्तियों के कारण धीरे–धीरे प्रसिद्ध होता गया। इसको आगे बढ़ाने में अनेक पाश्चात्य विचारकों ने अमूल्य योगदान दिया। इनमें हरबर्ट स्पेन्सर, फैड्रिक, डंकन, मैकाइवर, पेज, मूर, बोगार्डस, मैरेल, टायलर, एलरिज, जार्ज सिमेल, मैक्सबर्ग आदि का नाम उल्लेखनीय है। ''समाजशास्त्र को ज्ञान की वह शाखा माना जाता है जिसमें समाज, सामाजिक क्रियाओं, सामाजिक सम्बन्धों, सामाजिक अंतः क्रियाओं के साथ–साथ मानव व समाज के अन्य विविध पहलुओं का सुव्यवस्थित एंव वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।''

मानव जीवन को समुन्नत एवं सामाजिक परम्पराओं को विकसित बनाने में शिक्षा की भी महत्पूर्ण भूमिका होती है। इसी कारण हर समाज में, हर युग में शिक्षा की अनिवार्यता महसूस की गयी और शिक्षा को सामाजिक प्रक्रिया के रूप में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। शिक्षा को एक ऐसी सामाजिक प्रक्रिया माना जाता है जो मानव के व्यवहार में परिवर्तन एवं परिमार्ज्रन लाकर उसे सभ्य प्राणी के रूप में प्रतिष्ठित करती है। समाजशास्त्र का कार्य भी मनुष्य एवं

NOTES

समाज के आपसी सम्बन्धों को तलाशना और मानव के व्यवहार में परिवर्तन लाता है। इस प्रकार समाजशास्त्र और शिक्षा दोनों का कार्य मानव–व्यवहार में परिवर्तन लाना है। समाजशास्त्र और शिक्षा के आपसी सम्बन्धों को दृष्टिगत रखते हुए अमेरिकी विचारक ई0 जार्ज पेने (E. George Payne) ने 1928 में शिक्षा में एक नये विषयक्षेत्र का प्रतिपादन किया जिसे उन्होंने शैक्षिक समाजशास्त्र (Educatinal Sociology) नाम से अंलकृत किया। इस नये विषय से सम्बन्धित 1928 में ही एक पुस्तक "दी प्रिन्सीपल आफ एजूकेशनल सोशियोलाजी" भी लिखा। इस पुस्तक के माध्यम से उन्होंने शिक्षा और सामाजिक जीवन में सम्बन्धित विविध पहलुओं को स्पष्ट करते हुए शिक्षा के प्रभाव एवं महत्व को व्याख्यायित किया। आगे चलकर अनेकों अमेरिकी, फ्रांसिसी, जर्मनी, इंग्लैण्ड के विद्वानों ने इस विषय–क्षेत्र पर अन्वेषण करके शैक्षिक समाजशास्त्र को एक नयी दिशा प्रदान किया। इसमें जान डीवी, स्नेडेन, पीटर्स, बोल्टन, कुक तथा टाबा, दुर्खीम, मैक्सबेवर, ब्राउन, ओटावे आदि का नाम आदर स्वरूप लिखा जा सकता है। वर्तमान समय में शैक्षिक समाजशास्त्र, शिक्षाशास्त्र के एक पृथक शाखा के रूप में स्थापित है। बी0ए0, एम0ए0, बी0एड0, एम0एड0 आदि कक्षाओं में यह पाठ्चर्या का अभिन्न अंग है। समाजशास्त्र के विद्यार्थी भी विविध कक्षाओं में इसका अध्ययन कर रहे हैं। अतएव शैक्षिक समाजशास्त्र के स्वरूप, आवश्यकता, महत्व पर चर्चा करना समीचीन प्रतीत होता है।

शैक्षिक समाजशास्त्र : अर्थ और परिभाषा :

(Educational Sociology; Meaning and Difinitions) :

शैक्षिक समाजशास्त्र, शिक्षाशास्त्र का नवीन विषय–क्षेत्र और समाजशास्त्र की एक शाखा है। शैक्षिक समाजशास्त्र के प्रतिपादक जार्ज पेने है तो समाजशास्त्र के आगस्ट कामटे। समाजशास्त्र व्यक्ति और समाज के आपसी सम्बन्धों एवं अन्य पहलुओं का सुव्यवस्थित और वैज्ञानिक अध्ययन करता है, तो शैक्षिक समाजशास्त्र, सामाजिक सम्बन्धों एवं विविध सामाजिक पहलुओं के सापेक्ष शिक्षा के प्रभाव एवं शिक्षा सम्बन्धी विविध पहलुओं का सुव्यवस्थित एवं वैज्ञानिक अध्ययन करता हे। समाजशास्त्र मे व्यक्ति एवं समाज ही मुख्य होते हैं तो शैक्षिक समाजशास्त्र में व्यक्ति, समाज, शिक्षा और उसके विभिन्न अंग मुख्य माने जाते हैं। समाजशास्त्र पूर्ण अनुशासनात्मक विषय है तो शैक्षिक समाजशास्त्र, शिक्षा शास्त्र और समाजशास्त्र के अध्ययन की एक शाखा है। अतएव स्पष्ट है कि समाजशास्त्र और शैक्षिक समाजशास्त्र में पूर्ण और अंश का सम्बन्ध है।

समाजशास्त्र समग्र रूप से समाज का क्रमबद्ध वर्णन और व्याख्या है (गिर्डिंग्स) और तो शैक्षिक समाजशास्त्र समग्र रूप में शिक्षा और समाज के पारस्परिक सम्बन्धों का वर्णन और व्याख्या है। (ओटावे) अतएव स्पष्ट है कि समाजशास्त्र और शैक्षिक समाजशास्त्र में मुख्य अन्तर विषय वस्तु के अध्ययन की भिन्नता से है। "शैक्षिक समाजशास्त्र, शिक्षा का वह विषय क्षेत्र है जिसमें बालकों पर सामाजिक वातावरण के प्रभावों का अध्ययन करके शिक्षा की व्यवस्था को सामाजिकता युक्त प्रवृत्तियों से सम्पृक्त कर उसके बहुमुखी विकास को मूर्त रूप दिया जाता है।"

NOTES

शैक्षिक समाजशास्त्र की कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्नवत् है।

जार्ज पेनी – "शैक्षिक समाजशास्त्र से अभिप्राय उस विज्ञान से है जो संस्थाओं, सामाजिक समूहों और सामाजिक प्रक्रिओं अर्थात सामाजिक सम्बन्धों का जिनसे व्यक्ति अपने अनुभवों को प्राप्त करता हैं, संगठित करता है, का वर्णन और व्याख्या है।"

(by Educational Sociology we mean the Science which described and expalins the institutions, social groups, and social processes, that is the social relationships in which on through which the individual gains and organizes the expereinces".)

डंकन– "शैक्षिक समाजशस्त्र व्यक्ति और उन प्रतिमानों की अन्योन्याक्रिया की प्रक्रिया का वैज्ञानिक अध्ययन है जो जैविक, मनोवैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक प्रभावों के सम्बन्ध से बने है।"

डी0 डब्ल0 डाडसन– "शैक्षिक समाजशास्त्र का सम्बन्ध सम्पूर्ण सांस्कृतिक परिवेश के समाहार से है, जिसमें और जिसके द्वारा अनुभव प्राप्त तथा व्यवस्थित किया जाता हैं।, शैक्षिक समाजशास्त्र विशेष रूप से यह जाना चाहता है कि शैक्षिक प्रक्रिया (सामाजिक नियंत्रण को किस प्रकार चलाया जाय कि व्यक्तित्व का भली भाँति विकास हो जाय।"

गुड– "शैक्षिक समाजशास्त्र, लोग सामाजिक समूहों में किस प्रकार रहते हैं, इन समूहों में रहकर वे किस प्रकार की शिक्षा प्राप्त करते हैं और इन समूहों में कुशलतापूर्वक रहने के लिए उनको किस प्रकार की शिक्षा की जरूरत है का वैज्ञानिक अध्ययन है।"

ए0के0सी0 ओटावे– "शैक्षिक समाजशास्त्र की संक्षिप्त परिभाषा यह है कि यह शिक्षा और समाज के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन है।"

NOTES

फ्रांसि जं0 ब्राउन– ''शैक्षिक समाजशास्त्र नतो अकेला शिक्षाशास्त्र है और न केवल समाजशास्त्र ही ।.... बल्कि यह शिक्षाशास्त्र और समाजशास्त्र दोनों है। शैक्षिक समाजशास्त्र दोनों क्षेत्रों के ज्ञान का उपयोग करता है। किन्तु समाजशास्त्रीय सिद्धांतों का सम्पूर्ण शैक्षिक क्रिया में उपयोग करके वह एक नया शास्त्र बन जाता है। शैक्षिक प्रक्रिया के अंतर्गत विषयवस्तु, क्रियाएँ विद्वालय प्रबन्ध तथा मापन आदि सभी का समावेश है।''

शैक्षिक समाजशास्त्र की उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर शैक्षिक समाजशास्त्र की प्रकृति के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती है।–

1. शैक्षिक समाजशास्त्र, शिक्षा शास्त्र और समाज शास्त्र का नवीन विषय क्षेत्र है।
2. शैक्षिक समाजशास्त्र में शिक्षाशास्त्र और समाज शास्त्र दोनों के सिद्धान्तों का समावेश होता है।
3. शैक्षिक समाजशास्त्र में शैक्षिक प्रक्रिया के संदर्भ में समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों की व्याख्या की जाती है।
4. शैक्षिक समाजशास्त्र में यह जाना जाता है कि शैक्षिक प्रक्रिया को किस प्रकार चलाया जाय कि उससे सामाजिक पृष्ठभूमि में बालक के व्यक्तित्व का भ़ली भाँति विकास हो जाय।
5. शैक्षिक समाजशास्त्र का सम्बन्ध सामाजिक, सांस्कृतिक, जैविक, मनोवैज्ञानिक प्रभावों को जानने तथा उनका शिक्षा में प्रयोग करने से होता है।
6. शैक्षिक समाजशास्त्र , विद्यालय को समाज का हिस्सा मानकर उसमें बालकों के बहुमुखी विकास की रूपरेखा प्रस्तुत करता है।
7. शैक्षिक समाजशास्त्र शैक्षिक परिस्थति में व्यवहार का निर्धारण करता है।
8. शैक्षिक समाजशास्त्र केवल विद्यालयी सन्दर्भ में शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यचर्या, पाठन–विधियों और मापन से ही सम्बन्धित नहीं होता है वरन् यह विद्वालय और समूचे समुदाय से भी सम्बन्धित होता है।
9. शैक्षिक समाजशास्त्र, शैक्षिक समस्याओं का समाधान समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से करता है।
10. शैक्षिक समाजशास्त्र सामाजिक नियंत्रण स्थापित करता है।

11. शैक्षिक समाजशास्त्र सामाजिक संस्थाओं, अंतः क्रियाओं की भूमिका का शैक्षिक परिस्थिति में अध्ययन है।

12. शैक्षिक समाजशास्त्र शिक्षा और समाज दोनों के उन्नयन, सिखाता एवं परिशोधन में महत्वपूर्ण भूमिका का निवर्हन करता है। NOTES

13. शैक्षिक समाजशास्त्र बालकों को सामूहिक जीवन जीने की कला सिखाता है।

शैक्षिक समाजशास्त्र एवं शिक्षा का समाजशास्त्र :

शैक्षिक समाजशास्त्र की उत्पत्ति के ऐतिहासिक विवेचन से स्पष्ट होता है कि एक लम्बे काल तक (1930–60) इसका कोई सर्वमान्य अर्थ या सम्प्रत्यय सदैव प्रचलित नहीं रहा। इसका विषय क्षेत्र निर्धारित नहीं किया जा सका। सन् 1947 तक शैक्षिक समाजशास्त्र के कम से कम सात विभिन्न प्रकार के विचार प्रचलित रहे। कुछ विद्वानों, समाजशास्त्रियों ने शैक्षिक समाजशास्त्र को सामाजिक प्रगति का साधन माना तो कुछ ने इसका सम्बन्ध शिक्षा के उद्देश्यों के निर्धारण से माना तथा कुछ विद्वानों ने सामाजीकरण की प्रक्रिया के विश्लेषण के रूप में परिभाषित किया जैसा कि निम्नलिखित विवरण से स्पष्ट हैं–

(1) लीस्टर वार्ड, गुड, एलवुड एवं काइनेमैन (Lister Ward, Good, Elwood, Kinneman) आदि समाजशास्त्रियों ने शैक्षिक समाजशास्त्र को सामाजिक प्रगति का साधन माना।

(2) फीने, स्नीडेन, पीटर्स, क्लीमेन्ट्स, काइनेमैन (Finney, Snedden, Peters, Clements and Kinneman) आदि समाजशास्त्रियों ने शैक्षिक समाजशास्त्र को शिक्षा के उद्देश्यों को निर्धारित करने वाला विषय माना।

(3) जोरबॉग, कुल्प, ब्राउन, स्मिथ (Zorbaugh, Kulp, Brown, Smith) आदि समाजशास्त्रियों के अनुसार शैक्षिक समाजशास्त्र एक व्यवहारिक समाजशास्त्र ही है जो समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों का शैक्षिक समस्याओं के हल करने से सम्बन्धित है।

(4) रॉबिन्स, एलवुड, स्मिथ, ब्राउन (Rbbins, Elwood, Smith, Brown) आदि समाजशास्त्रियों ने माना कि शैक्षिक समाजशास्त्र समाजीकरण की प्रक्रिया के विश्लेषण से सम्बन्धित है।

(5) पेनी, ब्राउन, रॉबिन्स (Payne, Brown, Robbins) आदि विद्वानों के मतानुसार शैक्षिक समाजशास्त्र एक उपयोगी प्रशिक्षण है, जो शिक्षा के क्षेत्र में काम करने वालों को दिया जाना चाहिए।

(6) कुक, वाइनर, होलिंगशीड, स्टेन्डलर (Cook, Varner, Stendler, Hollingsheed) के मतानुसार शैक्षिक समाजशास्त्र समाज में शिक्षा की भूमिका को निश्चित करता है।

NOTES

(7) वालर, जिनानेकी, विलसन, वारेन, कुक (Waller, Znanieeki, Wilson, Warren, Cook) आदि विद्वानों ने शैक्षिक समाजशास्त्र को विद्यालय के आन्तरिक सम्बन्धों तथा विद्यालय व समुदाय के पारस्परिक सम्बन्धों का विश्लेषण करनेवाला विषय माना।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि प्रारम्भ में शैक्षिक समाजशास्त्र की कोई एक सर्वसम्मत परिभाषा प्रचलित नहीं रही। विभिन्न विद्वानों ने अपनी–अपनी विचारधारा के अनुसार इसे परिभाषित करने का प्रयत्न किया। फलस्वरूप अमेरिका में 1947 के लगभग कुछ समाजशास्त्रियों ने अनुभव किया कि शैक्षिक समाजशास्त्र में समाजशास्त्रीय विचारों को अव्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है जिससे न तो समाजशास्त्र का विकास हो रहा है न ही शिक्षा का। उन्होंने यह भी यह अनुभव किया कि शैक्षिक समाजशास्त्र के अन्तर्गत कई बार समाजशास्त्रीय सम्प्रत्ययों एवं सिद्धान्तों का प्रयोग नही किया जाता है। इस प्रकार के चिन्तन ने अमेरिका के नीलग्रोस व अन्य समाजशास्त्रियों को शैक्षिक समाजशास्त्र के प्रचलित स्वरूप को सुधारने की ओर प्रेरित किया। फलतः शैक्षिक समाजशास्त्र 'Educational Sociology' का शीर्षक बदलकर सोशियोलॉजी ऑफ एजुकेशन 'Sociology of Education' रखा गया। सन् 1963 में जर्नल ऑफ एजुकेशनल सोशियोलॉजी (Journal of Sociology) का नाम बदलकर जर्नल ऑफ सोशियोलॉजी ऑफ एजुकेशन (Journal of Sociology of Education) कर दिया गया। तभी से विश्व के अधिकांश समाजशास्त्रियों एवं शिक्षाशास्त्रियों द्वारा 'शैक्षिक समाजशास्त्र' के स्थान पर 'शिक्षा का समाजशास्त्र' शीर्षक को स्वीकार किया गया है।

शैक्षिक समाजशास्त्र एवं शिक्षा का समाजशास्त्र में अन्तर

(Difference between Educaational Sociology and Sociology of Education)

शिक्षा का समाजशास्त्र ज्ञान की वह शाखा है जो विद्यालय तथा समुदाय में शैक्षिक प्रक्रिया के माध्यम से सामाजिक शक्तियों को समझने तथा नियंत्रित करने का प्रयास करती है। यह वैयक्तिक तथा सामाजिक व्यवहार को परिवार, विद्यालय, चर्च, क्रीडा समूह आदि के माध्यम से नियंत्रित करने का प्रयास करती है। इसके अन्तर्गत उन सभी शैक्षिक प्रक्रियों का विश्लेषण एवं उपयोग किया जाता है। जो व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास करके उसे सामाजिक जीवन के लिए तैयार करती है। इस प्रकार शिक्षा का समाजशास्त्र शिक्षा की प्रौद्योगिकी नहीं है बल्कि ज्ञान की वह शाखा है जो शिक्षा के समाजशास्त्रीय सिद्धानत का प्रतिपादन करती है।

हेन्सन (Henson) के अनुसार "शिक्षा का समाजशास्त्र, शिक्षा तथा समाज के बीच सम्बन्ध का वर्णन करता है।"

शिक्षा का समाजशास्त्र शिक्षा व समाज के बीच वह महत्वपूर्ण माध्यम है जो एक ओर विभिन्न सामाजिक प्रवृत्तियों, सामाजिक संगठनात्मक व्यवस्थाओं और सामाजिक समस्याओं का अध्ययन करके शिक्षा की पद्धति, पाठ्यक्रम और अन्य कार्यक्रमों के निर्धारण में सहायता करता है जो दूसरी ओर समाज की शिक्षा सम्बन्धी व्यवस्थाओं को विकसित और उचित मार्ग पर प्रवाहित करते हुए उसे पूर्ण रूप से उपयोगी बनाकर सामाजिक विकास के पथ को प्रशस्त करता है। NOTES

वर्तमान समय में शिक्षा के समाजशास्त्र के प्रयोग को वरीयता दी जाती है। और विद्वानों ने तो शैक्षिक समाजशास्त्र एवं शिक्षा का समाजशास्त्र के बीच अन्तर स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

प्रो0 टेलर (Prof. Taylor) ने अपने लेख 'सोशियोलॉजी ऑफ एजुकेशन' (Sociology of Education) में दोनों के अन्तर को स्पष्ट करते हुए लिखा है– "शैक्षिक समाजशास्त्र में शैक्षिक एवं सामाजिक प्रश्नों को महत्व दिया जाता है जबकि शिक्षा के समाजशास्त्र में समाजशास्त्रीय समस्याओं को महत्व दिया जाता है।"

आर0 जे0 स्टैलकप (R.J. Stalcup) ने अपनी पुस्तक 'Sociology and Education' में सोशल फाउन्डेशन्स ऑफ एजुकेशन (Social Foundations of Educaation) शब्द का भी प्रयोग किया है और तीनों के अन्तर को इस प्रकार स्पष्ट किया है– "शैक्षिक समाजशास्त्र के अन्तर्गत समाजशास्त्र के सामान्य सिद्धान्तों एवं निष्कर्षो का शिक्षा की प्रक्रिया अथवा प्रबन्ध में प्रयोग किया जाता है। शिक्षा के समाजशास्त्र के अन्तर्गत शैक्षिक संस्थाओं में निहित समाजशास्त्रीय प्रक्रियाओं का विश्लेषण आता है। शिक्षा का सामाजिक आधार, अध्ययन की वह शाखा है जिसमें सामान्यतया इतिहास, दर्शन, शिक्षा का समाजशास्त्र एवं तुलनात्मक शिक्षा सम्मिलित है। इसका क्षेत्र विस्तृत है।"

जेन्सन (Jensen) ने अपनी पुस्तक 'Sociology of Education' में दोनों के अन्तर को स्पष्ट करते हुए तर्क किया है कि, "शैक्षिक समाजशास्त्र की समस्याएं, शिक्षा के क्षेत्र से उत्पन्न होती हैं जबकि शिक्षा के समाजशास्त्र की समस्याएं समाजशास्त्र के क्षेत्र से उत्पन्न होती हैं।"

जेन्सन के अनुसार "शैक्षिक समाजशास्त्र, अध्ययन का एक व्यावहारिक क्षेत्र है जो कि शैक्षिक समस्याओं से तार्किक सम्बन्ध रखता है। शिक्षा के समाजशास्त्र का प्रमुख उद्देश्य,

शैक्षिक घटनाओं, संस्थाओं के सामाजिक पक्ष की खोज करना है। यहाँ पर जिन समस्याओं का परीक्षण किया जाता है वे प्रमुख रूप में समाजशास्त्र से सम्बन्धित होती है न कि शिक्षा से।

NOTES

एनजेल (Angell) ने यह दृष्टिकोण प्रस्तुत किया कि, "शैक्षिक समाजशास्त्र केवल समाजशास्त्र के शुद्ध विज्ञान की एक शाखा है। उस ज्ञान के अंग को, जो विद्यालय में स्थित अनुसंधानों के आधार पर विकसित हुआ है, शिक्षा का समाजशास्त्र कहा जाना चाहिए।"

जेननसिकी (Znaniecki) ने अपनी पुस्तक 'द सांइटिफिक फंक्शन ऑफ द सोशियोलॉजी ऑफ एजुकेशन (The Scientific Function of The Sociology of Education) में शैक्षिक समाजशास्त्र और शिक्षा के समाजशास्त्र के अन्तर को निम्न प्रकार से अभिव्यक्त किया जाता है–

"शैक्षिक समाजशास्त्र शैक्षिक मनोविज्ञान की भॉति एक विधा विशेष की तरह विकसित हुआ है जो कि शिक्षाशास्त्रियों को उनके भावी कार्यो के लिए ही तैयार करने के लिएं रूपांकित हुआ। यह सामाजिक अनुसंधान के परिणामों का उपयोग शैक्षिक क्रियाओं की योजना बनाने में तथा इन योजनाओं को क्रियान्वित करने की प्रभावशाली विधियों को विकसित करने के लिए करता है। शिक्षा के समाजशास्त्र का वर्णन ज्ञान की उस शाखा के रूप में किया जा सकता है जो कि शिक्षा के सामाजिक सिद्धान्त को प्रस्तुत करता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि शैक्षिक समाजशास्त्र के अन्तर्गत शैक्षिक पक्ष की प्रधानता होती है और सामाजिक पक्ष गौण रहता है जबकि शिक्षा के समाजशास्त्र के अन्तर्गत व्यापक सामाजिक सन्दर्भ में शिक्षा की प्रक्रिया का अध्ययन किया जाता है। शिक्षा का समाजशास्त्र पर्याप्त रूप से विकसित क्षेत्र है जिसके अन्तर्गत न केवल सामाजशास्त्र बल्कि कुछ अंश में सामाजिक दर्शनशास्त्र, सामाजिक मनोविज्ञान, सामाजिक मानवशास्त्र विधि अथवा कानून राजनीतिशास्त्र का भी समावेश होता है। स्पष्ट है कि शैक्षिक समाजशास्त्र वह विज्ञान है जो संस्थाओं, सामाजिक समूहों तथा सामाजिक प्रक्रियाओं की व्याख्या एवं वर्णन करता है तथा शैक्षिक समस्याओं के लिए समाजशास्त्र का प्रयोग करता है। जबकि शिक्षा के समाजशास्त्र के अन्तर्गत विद्यालय में सामाजिक घटना (Phenomennon) का अध्ययन किया जाता है जिससे संस्था का सामाजिक पर्यावरण तथा सामाजिक जीवन सुधारा जा सके। जैसा कि शिक्षा के समाजशास्त्र की निम्नलिखित परिभाषा से स्पष्ट होता है–

बुकओवर "शिक्षा का समाजशास्त्र शिक्षा प्रणाली में निहित सामाजिक प्रक्रियाओं तथा सामाजिक प्रतिमानों, के विश्लेषण का वैज्ञानिक अध्ययन है।"

सामाजिक संगठन की अवधारणा (Concept of Social Organization) :

NOTES

सामाजिक संगठन उन संस्थाओं एवं सगठनों को कहा जाता है। जो नियामानुसार संगठित होती हैं तथा इनका संगठन समाज के कुछ व्यक्तियों द्वारा किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया जाता है तथा इनका संचालन भी संगठन के कुछ प्रमुख चुने हुए लोगों द्वारा या पदाधिकारियों द्वारा किया जाता है। इनकी सदस्यता व्यक्ति के लिए अनिवार्य न होकर ऐच्छिक होती है। एक व्यक्ति एक साथ एक से अधिक संगठनों का सदस्य हो सकता है। तथा वह अपने उद्देश्य की पूर्ति होने पर अपनी इच्छानुसार वह उस संगठन से अपनी सदस्यता समाप्त कर सकता है।

सामाजिक संगठनों की सामाजिक व्यवस्था में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका होती है समाज में विविध उद्देश्यों को लेकर यहॉ एक ओर विविध संगठनों का निर्माण होता रहता है। वहीं दूसरी ओर संगठनों के प्रबन्धन, संचालन में कमी आ जाने पर या फिर उसके ठीक ढंग से अपने उद्देश्य की पूर्ति न कर पाने पर विविध संगठनों का समाज में विघटन भी होता रहता है। समाज में विभिन्न संगठनों में आपसी सम्बन्ध मधुर भी हो सकते हैं या फिर उद्देश्यों में विभिन्नता के कारण उनमें आपसी संघर्ष भी हो सकता है। विविध संगठनों में आपसी सम्बन्धों का यह जटिल जाल ही समाज कहलाता है तथा व्यक्ति व संगठन, व्यक्ति व व्यक्ति, या फिर संगठन व संगठन के बीच आपसी आदान प्रदान को सामाजिक अन्तःक्रिया कहते हैं। सामाजिक अन्तःक्रियायें बालक के विकास व उसके सामाजीकरण में महती भूमिका निभाती है।

सामाजिक संगठन को प्रभावित करने वाले कारक (Factor Influencing Social Organization) :

सामाजिक संगठन समाज के अति महत्वपूर्ण अंग हैं कोई भी सामाजिक व्यवस्था अपने कार्यो का सम्पादन अपने विविध सामाजिक संगठनों द्वारा ही करती है। अतः स्वाभाविक है कि समाज में आने वाले किसी भी प्रकार के परिवर्तन से सामाजिक संगठन प्रभावित हुए बिना नहीं रहते है। सामाजिक संगठनों को प्रभावित करने वाले कारक निम्नांकित हैं–

1. देश की सामाजिक व्यवस्था :

किसी भी देश की सामाजिक व्यवस्था के अनुसार ही उस देश में सामाजिक संगठनों का निर्माण होता है। जैसे कि परम्परागत सामाजिक व्यवस्था में सामांजिक संगठन व आधुनिक समाज में सामाजिक संगठन नितान्त रूप से भिन्न होते हैं।

2. देश की राजनीतिक व्यवस्था :

NOTES

देश की राजनीतिक व्यवस्था भी देश की सामाजिक व्यवस्था की तरह सामाजिक संगठनों पर गहरा प्रभाव डालती है। देश की राजनीतिक व्यवस्था से परिवर्तित होते ही देश के सामाजिक संगठनों में भी परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगते है। तथा सामाजिक संगठन की नई राजनीतिक व्यवस्था के अनुरूप अपने आप को ढाल लेते हैं या फिर वे अनुकूलन के अभाव के कारण विघटित हो जाते हैं।

3. देश की भौगोलिक स्थिति :

विविध देशों भौगोलिक स्थिति में विविधता होती है। किसी भी देश की भौगोलिक स्थिति के अनुरूप ही उस देश के नागरिकों की आवश्यकतायें व अपेक्षायें होती हैं जिनकी प्राप्ति हेतु विविध समाजिक संगठनों का गठन किया जाता है।

4. देश की आर्थिक व्यवस्था :

देश की आर्थिक व्यवस्था उस देश की सामाजिक व्यवस्था की रीढ होती है। यह कहना नितान्त कठिन है कि देश की आर्थिक व्यवस्था के अनुसार देश की सामाजिक व्यवस्था होती है या फिर देश की सामाजिक व्यवस्था के अनुसार ही वहॉ की आर्थिक व्यवस्था का निर्माण होता है। पूँजीवादी, मिश्रित व समाजवादी अर्थ व्यवस्थाओं में सामाजिक संगठनों में भिन्नता पायी जाती है।

5. देश की सभ्यता एवं संस्कृति :

किसी भी देश की सभ्यता व संस्कृति उस देश की आत्मा होती है। तथा उस देश की सामाजि, राजनीतिक व आर्थिक व्यवस्था का दर्पण होती है। किसी भी देश में जैसी सभ्यता व संस्कृति पायी जाती है वैसी ही वहॉ सामाजिक संगठनों का निर्माण होता है।

संगठनात्मक गतिशीलता (Organizational Dynamics) :

संगठनात्मक गतिशीलता से तात्पर्य संगठन के गतिमान या गतिशील होने से है। किन्तु इसका यह तात्पर्य यह कदापि ही नहीं कि आज जो संगठन भारत में कल वे संगठन चलकर यूरोप में होंगे और जो यूरोप में संगठन है वे भारत में होंगे। संगठन के गतिशील या गतिमान होने से तात्पर्य यह है कि विभिन्न समूहों के सदस्य व्यक्तियों या विविध पदों पर कार्यरत कार्यकर्ताओं की अपनी वास्तविक स्थिति पर परिवर्तन होने से है।

व्यक्तियों की अपनी वास्तविक स्थिति में परिवर्तन दो प्रकार का हो सकता है। पहला यह कि वह व्यक्ति उन्नति कर सकता है या फिर उसकी अवनति हो सकती है तथा दूसरा यह कि वह व्यक्ति अपनी समान स्थिति, महत्व व सामाजिक गरिमा वाले दूसरे पद में कार्यरत हो सकता है इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सामाजिक या संगठनात्मक गतिशीलता भी दो प्रकार की होती है।

NOTES

1. लम्बवत या उदग्र गतिशीलता
2. क्षैतिज या समतल गतिशीलता

लम्बवत या उदग्र गतिशीलता के अन्तर्गत व्यक्ति अपनी मूल या वास्तविक स्थिति में उन्नति या अवनति करता है। जैसे की कोई व्यक्ति अपनी वरिष्ठता या फिर अपनी सामाजकि कुशलता में वृद्धि करके या किसी सामाजिक कौशल विशेष के विशिष्ट प्रशिक्षण प्राप्त करके अपनी मूल या वास्तविक स्थिति में उन्नति कर सकता है या फिर कोई व्यक्ति अपनी लापरवाही या कार्यात्मक अकुशलता के कारण अपने वास्तविक पद से अवनति होकर नीचे के पद पर या फिर सेवामुक्त आदि कुछ भी हो सकता है।

क्षैतिज या समतल गतिशीलता से तात्पर्य व्यक्तियों का अपनी वास्तविक स्थिति या उसी के समान पद या प्रतिष्ठा वाले किसी दूसरे संगठन या पद पर कार्य करने से है। इसमें व्यक्ति की पद या प्रतिष्ठा में अन्तर न आकर उसके स्थान, संगठन में अन्तर हो सकता है। जैसे कि कोई व्यक्ति किसी जिले के माध्यमिक विद्यालय में सहायक अध्यापक के पद पर कार्यरत है और वह किसी दूसरे जिले में या फिर किसी राजकीय या केन्द्रीय माध्यमिक विद्यालय के सहायक अध्यापक के रूप में अपना पद परिवर्तित कर लेता है तो यह क्षैतिज या समतल गतिशीलता का एक अतिउत्तम उदाहरण होगा।

सामाजिक संगठन की विशेषताऐं :

सामाजिक संगठन की कुछ प्रमुख विशेषताऐं अग्राकिंत है–

1. सामाजिक संगठन औपचारिक या अनौपचारिक दोनों ही प्रकार के हो सकते हैं।
2. सामाजिक संगठनों का निर्माण सामाज के कुछ व्यक्तियों द्वारा कुछ विशेष उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किया जाता है।

NOTES

3. सामाजिक संगठनो कीं सदस्यता व्यक्ति के लिए अनिवार्य नहीं होती है। एक व्यक्ति एक साथ कई संगठनों की सदस्यता अपनी इच्छानुसार ग्रहण कर सकता है या फिर किसी संगठन की अपनी सदस्यता को समाप्त भी कर सकता है।

4. विविध सामाजिक संगठनों के आपसी सम्बन्ध किसी भी सामाजिक व्यवस्था के मूलाधार होते हैं।

5. सामाजिक संगठनों का समाज की आवश्यकताओं व परिस्थितियों के अनुरूप गठन व विघटन होता रहता है।

6. किसी भी देश में सामाजि संगठनों का निर्माण उस देश की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व्यवस्था के अनुरूप ही होता है। तथा उस देश के सामाजिक संगठन भी उस देश की सामाजिक राजनीतिक व आर्थिक दशा के सूचक होते हैं।

7. किसी भी देश की सभ्यता व संस्कृति उस देश के सामाजिक संगठनों पर अपना विशिष्ट छाप छोडती है।

8. सामाजिक संगठन, सामाजिक अन्तःक्रियाओं का मूख्य साधन होते हैं।

सामाजिक संगठनों के शैक्षिक निहितार्थ (Educational Implications of Social Organizations) :

आज किसी भी समाज में शिक्षा की प्रक्रिया 3 रूपों में चलती है– औपचारिक (Formal) और निरौपचारिक (Nonformal) और अनौपचारिक (Informal) आदर्श भारतीय समाज के निर्माण में शिक्षा के अनौपचारिक अभिकरणों व सामाजिक संगठनों यथा– परिवार, समुदाय, सामाजिक एवं धार्मिक संस्थाओं व राजनैतिक संगठनों आदि की महती भूमिका होती है। यह एक बडा कार्य है और इसको तभी पूरा किया जा सकता है जब शिक्षा की सभी संस्थायें इसके लिए प्रयत्नशील हों।

हम जानते है कि इस समय भारतीय समाज में अधिकतर परिवार, समुदाय, सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक संगठन ही आदर्श भारतीय समाज के निर्माण में बाधक है। तब इनसे क्या अपेक्षा करें इनमें सुधार लाने के लिए ही हमने इनकी नींव के पत्थरों–बच्चों को सही दिशा पर लगाने की बात करी है पर दूसरी ओर यह बात भी सही है कि जब तक यह संगठन और शिक्षण संस्थाओं को पूर्ण तन्मयता से साथ नहीं देते तब तक शिक्षा संस्थायें भी अपना कार्य सही रूप में नहीं कर सकती है। अतः अब आवश्यक है कि जन संचार के माध्यम से हम जन चेतना जागृत करे और सबको आदर्श भारतीय समाज के निर्माण की ओर अग्रसर करें।

यदि हम ध्यान पूर्वक देखें तो स्पष्ट होगा कि इस भारतीय समाज में जो बुराईयॉ बढी हैं उनका मुख्य कारण वोट की गन्दी राजनीति है। इस वोट की गन्दी राजनीति ने ही देश में क्षेत्रीय, जातिय, सांस्कृति और धार्मिक वैमनस्यता को बढावा दिया है। देश में ईमानदारी व कर्तव्यनिष्ठा की कमी भी इस वोट की गन्दी राजनीति की ही देन है। देश में बढते हुए अपराधों के पीछे भी इन राजनेताओं का हाथ है और यह सब बाते किसी से छिपी नहीं है न्यूज, जनसचांर के माध्यम अब इन राजनैतिक संगठनों और राजनेताओं को बेनकाब कर रहे हैं परन्तु देश का दुर्भाग्य है कि यहॉ की जनता अब भी इनके पीछे दौड रही है यदि कुछ सामाजिक एवं धार्मिक संगठन युवा शक्ति को सचेत कर सकें तो समझियें कि यह जंग भी जीत लिया युवकों को अब क्रान्ति का बिगुल बजाना ही होगा।

NOTES

NOTES

(Society and Education)

समाज का अर्थ एवं परिभाषा :

(Meaning and Difinition of Society)

समान्य रूप से व्यक्तियों के समूह को समाज कहते हैं। व्यक्तियों के इन समूह विशेषों का अध्ययन सभी सामाजिक विज्ञानों में किया जाता है। मानवशास्त्र में मनुष्यों के किसी भी समूह को समाज की संज्ञा दी जाती है। यहाँ तक कि आदिम समुदाय को भी समाज कहा जाता है। भूगोल में क्षेत्र विशेष के समान सभ्यता वाले लोगों के समुदाय को समाज कहते है; जैसे – भारतीय समाज यूरोपीय समाज। धर्मशास्त्र में धर्म विशेष के मानने वालों के समुदाय को समाज कहते हैं; जैसे हिन्दू समाज, ईसाई समाज और मुसलमान समाज। राजनीतिशास्त्र में राज्य विशेष के लोगों के समूह को समाज कहते हैं; जैसे– भारतीय समाज, ब्रिटिश समाज और अमेरीकी समाज। परन्तु समाजशास्त्र में समाज का अर्थ इन सबसे भिन्न रूप में लिखा जाता है।

समाजशास्त्रीय अर्थ में व्यक्तियों के समूह को समाज नहीं कहते अपितु समूह के व्यक्तियों में पाए जाने वाले सामाजिक सम्बन्धों की व्यवस्था अथवा जाल को समाज कहते हैं। अब प्रश्न उठता है कि सामाजिक सम्बन्ध क्या हैं। जब दो या दो से अधिक व्यक्ति एक दूसरे के प्रति सचेत होते हैं और एक दूसरे के प्रति कुछ व्यवहार करते है तो हम कहते हैं कि उनके बीच सामाजिक सम्बन्ध स्थापित हो गए हैं। यह आवश्यक नही कि वे सम्बन्ध मधुर और सहयोगात्मक ही हों, ये कटु और संघर्षात्मक भी हो सकते हैं। समाजशास्त्र में इन दोनों प्रकार के सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार समाज का सर्वप्रथम मूल तत्व दो या दो से अधिक व्यक्तियों की पारस्परिक जागरूकता है। दो या दो से अधिक व्यक्तियों के एक दूसरे के प्रति सचेत होने के लिए यह आवश्यक है कि उनके उद्देश्य अथवा विचारों में या तो समानता हो या भिन्नता। इस प्रकार समानता अथवा भिन्नता समाज का दूसरा मूल तत्व होता है। यह पारस्परिक जागरूकता दो ही रूपों में परिणित हो सकती है। सहयोग में अथवा संघर्ष में। इसलिए सहयोग अथवा संघर्ष को समाज का तीसरा मूल तत्व माना जाता है। वस्तुस्थिति यह है कि मनुष्य अपनी आवश्यताओं की पूर्ति हेतु एक दूसरे के प्रति सचेत होते हैं और वे तब तक इन सम्बन्धों से नहीं बँधते जब तक उनकी एक दूसरे से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति

नहीं होती। इसे समाजशास्त्री अन्योन्याश्रितता कहते है। यह समाज का चौथा मूल तत्व होता है। समाज के बारे में दो तथ्य और हैं, एक तो यह कि समाज अमूर्त होता है और दूसरा यह कि यह केवल मनुष्य जाति में ही नहीं अपितु पशु–पक्षियों और कीडे–मकोडों में भी पाया जाता है। यह बात दूसरी है कि समाजशास्त्र में केवल मानव समाज का ही अध्ययन किया जाता है।

NOTES

समाज की परिभाषा :

सभी समाजशास्त्री समाज को अमूर्त मानते हैं परन्तु उसकी परिभाषा उन्होंने भिन्न–भिन्न रूप में की है। कुछ मुख्य परिभाषाएं प्रस्तुत हैं। टालकॉट पार्सन्स के शब्दों में–

समाज को उन मानवीय सम्बन्धों की पूर्ण जटिलता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो साधन तथा साध्य के सम्बन्ध द्वारा क्रिया करने से उत्पन्न हुए हैं, वे चाहे वास्तविक हों अथवा प्रतीकात्मक।

(Society may be defined as total complex of human relationship in so far as they grow out of action in terms of means and ends, relationship, intrinsic or symboilic.

- Talcott Parsons)

मैकाइवर और पेज ने समाज को थोड़े अधिक स्पष्ट रूप में परिभाषित किया हैं उनके अनुसार–

समाज रीतियों तथा कार्य प्रणालियों की, अधिकार तथा पारस्परिक सहयोग की, अनेक समूहों और विभागों की, मानव व्यवहार के नियन्त्रणों और स्वतन्त्रताओं की एक व्यवस्था है। इस सतत् परिवर्तनशील व्यवस्था को हम समाज कहते हैं।

(Society is a system of usages and procedures of authrity and mutual aid, of many groupings and subdivisions, of control of human behaviour and of liberties. this ever changing complex system we call society. -Maclver and Page

इसी बात को उन्होंने आगे संक्षिप्त रूप में इस प्रकार कहा है–

यह (समाज) सामाजिक सम्बन्धों का एक जाल है जो सदैव बदलता रहता है।

(It (Society) is web of social relationship and it is always changing.

- Maclver and Page)

लापियर महोदय द्वारा प्रस्तुत परिभाषा अपने में संक्षिप्त भी है और स्पष्ट भी। उनके शब्दों मे–

NOTES

समाज से तात्पर्य व्यक्तियों के समूह से नहीं अपितु समूह के व्यक्तियों के बीच होने वाली अन्तः क्रियाओं की जटिल व्यवस्था से है।

(The term society refers not to group of people but to complex pattern of the forms of interactions that rise among and between them. - Lapiere)

शिक्षा एवं समाज में सम्बन्ध :

(Relationship between Education and Society)

शिक्षा का इतिहास इस बात की पुष्टि करता है कि विभिन्न कालों तथा विभिन्न प्रकार के समाजों में विभिन्न प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती है। प्राचीन एवं मध्यकाल में समाज में धर्म की प्रधानता थी, अतः शिक्षा का स्वरूप धार्मिक था। शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम सभी के माध्यम से धार्मिक तथा चारित्रिक विकास पर बल दिया जाता था। आधुनिक समाज में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का प्रभाव है अतः शिक्षा द्वारा बालाकों में चिन्तन तर्क एवं निर्णय शक्ति के विकास पर बल दिया जाता है। समाज की समय–समय पर उसी प्रकार बदलती है जिस प्रकार समाज बदलता है। समाज की प्रकृति एवं आदर्श, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक दशाओं तथा सामाजिक परिवर्तनों सभी का प्रभाव शिक्षा व्यवस्था पर पड़ता है।

भारतीय समाज का शिक्षा पर प्रभाव

(Impact of Indian Society on Education)

NOTES

सर्वविदति तथ्य है कि प्रत्येक समाज के अनुरूप ही शिक्षा का नियोजन किया जाता है। समजा की विशेषता, आवश्यकता, मान्यता, मूल्य, शिक्षा में व्यवस्थित करके ही उद्देश्य का निर्धारण किया जाता है। इसी कारण शिक्षा को सामाजिक प्रक्रिया का दर्जा प्राप्त होता है। प्राचीन भारतीय समाज की प्रकृति को दृष्टिगत रखत ही प्राचीन भारतीय शिक्षा का विधान किया गया था। सम्पूर्ण शिक्षा में धर्म एवं आध्यात्मक का बोलबाला था। संस्कारों को विशेष महत्व दिया गया था। संस्कारों को विशेष महत्व दिया गया था। शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य पुरूषार्थ का अन्तिम चरण मोक्ष की प्राप्ति था। मोक्ष की प्राप्ति हेतु शारीरिक विकास, मानसिक विकास, बौद्धिक विकास, नैतिक एवं चारित्रिक विकास को लक्ष्य के रूप में शिक्षा में प्रतिष्ठित किया गया था। पाठ्यचर्या में सांसारिक एवं आधयात्मिक विषयों का अनुपम सम्मिश्रण था। देवालय, गुरूकुल शिक्षा के केन्द्र के रूप में जाने जाते थे। मध्यकाल में मकतब और मदरसे प्राथमिक एवं उच्च शिक्षा स्थंल थे। गुरू शिष्य दोनों में नैतिकता, सद्चरित्रता का समावेश था। किन्तु भारत में ब्रिटिश हुकुमत के पदार्पण के साथ ही भारतीय समाज में जब भौतिकवादी प्रवृत्तियों का अभ्युदय हुआ तब भारतीय शिक्षा महत्वपूर्ण बदलाव एवं प्रभाव से आच्छादित हुआ। यह प्रक्रिया स्वतन्त्रता के बाद भी बड़े द्रुति गति से चलती रही। संक्षेप में भारतीय समाज का भारतीय शिक्षा पर पड़ने वाले प्रभावों को निम्नवत् व्यक्त किया जा सकता है–

1. शारीरिक विकास पर प्रभाव (प्उचंबज वद चैलेपबंस क्मतमसवचउमदज)

स्वतन्त्र भारत में समाज के नौनिहालों को शारीरिक दृष्टि से उन्नत बनाने के लिए विशेष प्रयास किये गये। प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च स्तर तक की शिक्षा में विषयों की पढ़ाई के साथ–साथ पाठ्यसहगामी क्रिया के रूप में किसी न किसी रूप में शारीरिक शिक्षा की व्यवस्था की गयी। व्यायाम खेल–कूद, स्काउटिंग, गाइडिंग। छण्ब्ण्ए छण्ै्ण् योग शिक्षा, युवकमंगल दल, युवा कल्याण, यूवा–उत्सव, तरण–ताल, पार्क, मैदान आदि का विकास एवं प्रबन्ध करके शारीरिक सौष्ठव बनाने खेल शिक्षा को पाठ्यक्रम में स्थान दिया गया है। प्रत्येक विद्यालय में व्यायाम शिक्षक की नियुक्ति की गयी है।

NOTES

किन्तु इन सब सुविधाओं का अनुप्रयोग करने के स्थान पर आजकल छात्रगण अश्लील सिनेमा, साइवर कैफे, रेस्तरों में जाकर कामुकता के शिकार हो रहे हैं और अपना स्वास्थ्य चौपट कर रहे हैं।

2. मानसिक विकास पर प्रभाव (प्उचंबज वि डिमदजंस क्मअमसवचउमदज)

भारतीय समाज की प्रकृति का ही प्रभाव है कि भारतीय शिक्षा में नौनिहालों का मानसिक विकास करने के लिए अनेक उपाय किये गये हैं। तर्क–वितर्क, वाद–विवाद को शिक्षण–विधियों के अन्तर्गत महत्व दिया गया है। इंजीनियरिंग, चिकित्सा, तकनीकी, शिक्षा संस्थाओं की स्थापना की गयी है, जिससे विशिष्ट प्रतिभा सम्पन्न नागरिक विकसित होकर समाज का नव निर्माण करने में अपना योगदान दें। सभी के मानसिक विकास के लिए शिक्षा को अनिवार्य और निःशुल्क बना दिया गया है।

किन्तु इसके विपरीत शिक्षा संस्थाएं बालकों का पूर्णतः मानसिक विकास करने में असमर्थ है। छात्रगण तर्क–वितर्क, वाद–विवाद के स्थान पर गाइड, श्योर–सीरीज को पढ़कर अधकचरा ज्ञान प्राप्त करके येनकेन प्रकारेण परीक्षा पास करना अपना कर्तव्य समझ रहे हैं। तकनीकी एवं प्रविधिक शिक्षा अत्यन्त मॅहगी होने के कारण साधारण जनता इसे अपने पाल्यों को नहीं दिला पा रही है। अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा होने के बावजूद शत–प्रतिशत विद्यालय में बच्चों का प्रवेश सुनिश्चित नहीं हो पा रहा है।

3. आध्यात्मिक विकास पर प्रभाव (प्उचंबज वद ैचपतपजनंस क्मअमसवचउमदज)

भारती समाज से आध्यात्मिकता का लोप हो गया है। ऐसी स्थिति में वह शिक्षा के द्वारा बालकों में आध्यात्मिक मूल्यों का विकास नहीं करा पा रहा है। नैतिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा का विद्यालयों में कोई प्रबन्ध ही नहीं है। छात्रगण पाश्चात्य मूल्यों की ओर आकृष्ट हो रहे हैं। प्रमाण के स्थान पर वाय–वाय, टाटा प्रचलित होता जा रहा है। बालक शुरू से ही झूठ, फरेब का सहारा ले रहे हैं। शिक्षा से आध्यात्मिकता का लोप चिन्तनीय स्थिति उत्पन्न करता है।

4. संवेगात्मक विकास पर प्रभाव (प्उचंबज वद म्उवजपवदंस क्मअमसवचउमदज)

भारतीय समाज अनेकों कुत्सित बुराइयों का शिकार है। पारिवारिक दायित्व से अभिभावक विमुख होते जा रहे हैं। पारिवारिक संस्कारों की क्षीणता के नौनिहालों का यथोचित संवेगात्मक विकास नहीं हो पा रहा है। क्रोध की अधिकता देखने को मिल रहीं है। माता–पिता का भय बालकों से समाप्त होता जा रहा है। विद्यालयों में बालक गुटबाजी के शिकार होते जा रहे हैं। अर्थात् शिक्षा

बालकों का संवेगात्मक विकास करने में पूरी तरह असमर्थ है। यह भारतीय समाज का शिक्षा पर पड़ने वाला दूषित प्रभाव का द्योतक है।

5. भारतीय शिक्षा पर निर्धनता का प्रभाव (प्उचंबज व ि च्वअमतजल वद प्दकपंद म्कनबंजपवद)

NOTES

भारतीय समाज निर्धनता से अभिसिप्त है। यहाँ बहुत से लोग गरीबी रेखा के नीचे गुजर–बसर करते हैं। उनके लिए जीवन–यापन की मूलभूत आवश्यकताएं जब मुहैया नहीं हो पा रही है तो वे अपने पाल्यो के लिए शिक्षा हेतु आवश्यक संसाधन मुहैया नही करा पाते हैं। इससे निरक्षरता बढ़ रही है।

6. भारतीय शिक्षा पर अपराध का प्रभाव (प्उचंबज व ि ब्तपउमे वद प्दकपंद म्कनबंजपवद)

जनसंचार के बढ़ते साधनों तथा समाज में बढ़ती आपराधिक गतिविधियों से भारतीय शिक्षा भी प्रभावित हो रही है। बच्चे टी0वी0 सिनेमा में मारकाट एवं हिंसा प्रधान फिल्मों को देखकर बाल–अपराधी बनते जा रहे हैं। साथियों का कत्ल आजकल किसी न किसी रूप में विद्यार्थियों द्वारा अक्सर पढ़ने को मिल रहा है। छात्रों द्वारा सहपाठी छात्राओं के साथ छेड–छाड़, व्यभिचार आज की दूषित सामाजिक प्रवृत्तियों का शिक्षा पर दूषित प्रभाव का द्योतक है।

7. भारतीय शिक्षा पर जाति का प्रभाव (प्उचंबज व ि ब्जम वद प्दकपंद म्कनबंजपवद)

भारतीय शिक्षा, जाति व्यवस्था से प्रभावित है। विद्यालयों में अध्यानरत छात्रों एवं कार्यरत शिक्षकों ने अपनी जातियों से सम्बन्धित गुट बना लिए है। गुटबन्दी के कारण भाई–भतीजा, अंक दम देने की शिकायत सुनने को मिलती रहती है। इससे विद्यालयों में छात्र–अशान्ति, तोड़–फोड़, हड़ताल, मारपीट की विस्फोटक स्थिति उत्पन्न होती है।

शिक्षा का भारतीय समाज पर प्रभाव :

एक ओर यदि यह बात सत्य है कि समाज शिक्षा को प्रभावित करता है तो दूसरी ओर यह बात भी सत्य है कि शिक्षा समाज के स्वरूप को निश्चित करती है और उसकी सांस्कृतिक, धार्मिक राजनैतिक एवं आर्थिक स्थिति को प्रभावित करती है। शिक्षा मानव समाज की आधारशिला है वह समाज का निर्माण करती है, उसमें परिवर्तन करती है और उसका विकास कतरी है।

1. शिक्षा और समाज की भौगोलिक स्थिति पर नियन्त्रण :

NOTES

एक युग था जब मनुष्य को भौगोलिक परिस्थितियों का दास कहा जाता था परन्तु आज मनुष्य शिक्षा के द्वारा अपनी भौगोलिक परिस्थितियों पर नियन्त्रण करने में सफह हो गया है। वे दिन गए जब नदी और पहाड़ हमारे मार्ग में बाधक होते थें। शिक्षा के द्वारा हवाई जहाजों का निर्माण सम्भव हुआ और हवाई जहाजों से उड़कर हम नदी और पहाड ही पान नहीं करते अपितु बहुत कम समय में बहुत अधिक दूरी तय करते हैं। शिक्षा के द्वारा हम हर भौगोलिक परिस्थिति पर नियन्त्रण करने में सफल होते जा रहे हैं।

2. शिक्षा और समाज का स्वरूप :

शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य अपने, समाज के, संसार के और इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के बारे में जानकारी प्राप्त करता है। इस ज्ञान के आधार पर ही वह अपने जीवन के उद्देश्य निश्चित करता है और इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए वह भिन्न–भिन्न समाजों का निर्माण करती है। सच्चा वेदान्ती मनुष्य–मनुष्य में तो क्या, संसार की किन्दी दो वस्तुओं में भी भेद नहीं करना, वह सबको ब्रह्ममय देखता है। लेकिन ईश्वर विमुख व्यक्ति भौतिक पैमाने पर ही सब कुछ कसता है और मनुष्य–मनुष्य में अनेक प्रकार के भेद करता है। इस प्रकार भिन्न–भिन्न विचारधाराओं की रक्षा करती है और दूसरी ओर उसमें आवश्यक परिवर्तन करती है।

3. शिक्षा और सामाज की संस्कृति :

प्रत्येक समाज अपने सदस्यों में अपनी संस्कृति का संक्रमण शिक्षा के द्वारा ही करता है। इस प्रकार शिक्षा किसी समाज की संस्कृति का संरक्षण करती है। जब मनुष्य शिक्षित हो जाता है तो वह अपने अनुभवों के आधार पर अपनी संस्कृति में परिवर्तन करता है। इस प्रकार शिक्षा समाज की संस्कृति में विकास करती है। शिक्षा के अभाव में संस्कृति के विकास की कल्पना नहीं कर सकती।

4. शिक्षा और समाज की धार्मिक स्थिति :

हम यह देखते है कि कोई समाज अपनी शिक्षा में धर्म विशेष की शिक्षा का विधान करता है, कोई इस क्षेत्र में उदार दृष्टिकोण अपनाता है और संसार के भिन्न–भिन्न धर्मो की शिक्षा का विधान करता है और कोई समाज अपनी शिक्षा में धर्म को स्थान ही नहीं देता। पणिामस्वरूप पहले प्रकार के समाजों में धार्मिक कट्टरता पाई जाती ळै दूसरे प्रकार के समाजों में धार्मिक उदारता पाई जाती है और तीसरे समाज में अब एक ओर भौतिक विज्ञानों की शिक्षा में धार्मिक कूपमंडूकता एवं

अन्धविश्वासों का अन्त होने लगा है और दूसरी ओर बढ़ती हुई सामाजिक अराजकता से मनुष्य अपनी शिक्षा को वास्तविक धर्म पर आधारित करने की ओर उन्मुख होने लगा है। शिक्षा के अभाव में लोग धर्म के वास्तविक स्वरूप को समझ ही नही सकते।

NOTES

5. शिक्षा और समाज की राजनैतिक स्थिति :

शिक्षा से मनुष्य के ज्ञान में वृद्धि होती है और उसके आचरण को निश्चित दिशा दी जाती है। शिक्षा के द्वारा ही विचार करने एवं सत्य–असत्य में भेद करने की शक्ति का विकास होता है। शिक्षा के द्वारा ही समाज में राजनैतिक जागरूकता आती है और व्यक्ति अपने अधिकार एवं कर्त्तव्यों से परिचित होते है। इसी के द्वारा उनमें राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय भावना का विकास किया जाता है। बिना उचित शिक्षा के विधान के व्यक्ति केवल राष्ट्र का अन्धा भक्त बनाया जा सकता है, जागरूक नागरिक नहीं।

6. शिक्षा और समाज की आर्थिक स्थिति :

एक युग था जब शिक्षा के द्वारा मनुष्य में केवल मानवीय गुणों का विकास किया जाता था, परन्तु रोटी, कपडे, मकान की समस्या को सुलझाने वाली शिक्षा उस समय नहीं दी जाती थी, ऐसा नहीं कहा जा सकता। यह तो हो सकता है कि उस समय इसके लिए उचित विद्यालयों की स्थापना न की गई हो परन्तु परिवार और समुदायों में यह शिक्षा बराबर चलती रही होगी अन्यथा इस क्षेत्र में विकास कैसे होता। आज तो शिक्षा समाज की आर्थिक स्थिति का मूलाधार है। आज सभी समाज शिक्षा के द्वारा व्यक्ति को किसी व्यवसाय अथवा उत्पादन कार्य में निपुण करने का प्रयत्न करते है। देखा यह जा सकता है कि सिज समय में इस प्रकार की शिक्षा का जितना अच्छा प्रबन्ध है वह आर्थिक क्षेत्र में उतनी ही तेजी से बढ़ रहा है। बिना शिक्षा के हम आर्थिक क्षेत्र में विकास नहीं कर सकते।

7. शिक्षा और सामाजिक परिवर्तनः

एक ओर यदि यह बात सत्य है कि समाज शिक्षा में परिवर्तन करता है तो दूसरी ओर यह बात भी सत्य है कि शिक्षा द्वारा सामाजिक परिवर्तन होते है। शिक्षा द्वारा मनुष्य अपनी जाति की भाषा, रहन–सहन, खान–पान के तरीके और रीति रिवाज सीखता है और उसके मूल्य एवं मान्यताओं से परिचित होता है। इससे उसका मानसिक विकास होता है और वह अपने, समाज के तथा इस ब्रह्माण्ड के बारे में सदैव सोचता रहता है। समाज में रहकर वह नए–नए अनुभव करता है। और समाज की आवश्यकताओं एवं समस्याओं से परिचित होता है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति और समस्याओं के हल के लिए वह विचार करता है और उनके हल खोजता है और इससे समाज

को प्रभावित करता है। कभी–कभी एक व्यक्ति पूरे समाज को बदल देता हैं शिक्षा के अभाव में सब सम्भव नहीं। सामाजिक क्रान्ति के लिए शिक्षा मूलभूत आवश्यकता होती है।

NOTES

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि समाज और शिक्षा अन्योन्याश्रित होते हैं, जैसा कि किसी समाज की भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनैतिक और आर्थिक स्थिति होती है वैसी ही उसकी शिक्षा होती है। इतना ही नहीं अपितु किसी समाज में जैसी शिक्षा की व्यवस्था की जाती है वैसी ही उस समाज की भौगोलिक स्थिति पर पकड़ और उसके स्वरूप एवं उसके सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनैतिक और आर्थिक स्थिति में परिवर्तन होने लगता है। सामाजिक परिवर्तन लाने में शिक्षा आधारभूत भूमिका अदा करती है।

भारतीय समाज में शिक्षा का स्वरूप और राष्टीय शिक्षा नीति (1986) का संकल्पः

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में भारतीय समाज की स्थिति और शिक्षा पर उसके पडनेवाले प्रभावों को दृष्टिगत रखते हुए राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा का नियोजन किया गया। मूल्य क्षरण की स्थिति में सुधार तथा भारतीय समाज को अधुनातन बनाने हेतु राष्ट्रीय शिक्षा नीति की भूमिका का प्रथम वाकय निम्न रखा गया – ''मानव इतिहास में आदिकाल से शिक्षा का विविध भॉति विकास एवं प्रसार होता रहा है। प्रत्येक देश अपनी सामाजिक – संस्कृतिक अस्मिता को अभिव्यक्ति देने और पनपाने के लिए साथ ही, समय की चुनौतियों का सामना करंने के लिए अपनी विशिष्ट शिक्षा प्रणाली विकसित करता है, लेकिन देश के इतिहास में कभी–कभी ऐसा समय आता है, जब मुद्दतों से चले आ रहे उस सिलसिले को एक नई दिशा देने की नितान्त जरूरत हो जाती है। आज वही समय है।''; हमारा देश आर्थिक और तकनीकी लिहाजसे उस मुकाम पर पहुँच गया है, जहाँ से हम अब तक के सचित साधनों का इस्तेमाल करते हुए समाज के हर वर्ग को फायदा पहुँचाने का प्रबल प्रयाास करें।

अतएव स्पष्ट है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति भारतीय समाज को नवीन मंतव्यों से अनुप्रणित करने के साथ–साथ सनातन, शाश्वत मूल्यों में अपूर्व समन्वय करने का हिमायती है। इसी को दृष्टिगत रखते हुए राष्ट्रीय शिक्षा नीति ममें उदीयमान भारतीय समाज के अनुरूप उभरती चुनौतियों एवं समस्याओं के समाधान हेतु भारतीय शिक्षा का सार्वभौमिक स्वरूप निर्धारित किया गया। इसमें निहित प्रमुख बिन्दु निम्नवत् हैं–

1. समान शैक्षिक संरचना (10+2+3) का संचालन
2. शिक्षा में लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना

3. कोर पाठ्चर्या का संचालन

4. अधिगम के न्यूनतम स्तर का निर्धारण

5. प्रौढ़ एवं सतत् शिक्षा का उचिम प्रबन्ध

6. महिलाओं एस0सी0/एस0टी0/पिछडे वर्गों/अल्पसंख्यको/विकलांगों हेतु शिक्षा का विशेष

7. शिक्षा में बालकेन्द्रित दृष्टिकोण का समावेश

8. प्राथमिक विद्यालयों में सुविधाओं की उपलब्धता हेतु आपरेशन ब्लैकबोर्ड योजना का शुभारम्भ

9. माध्यमिक शिक्षा का व्यवसायीकरण

10. नवोदय विद्यालयों की स्थापना

11. खुला विश्वविद्यालय/दूरस्थ अध्ययन को बढ़ावा

12. ग्रामीण विश्वविद्यालयों की स्थापना

13. शिक्षा से जुडे सभी लोगों की जवाब देही सुनिश्चित करना

14. सामाजिक सरोकारों के अनुरूप पाठ्यचर्या का बदलाव

15. शिक्षा में मूल्यों की स्थापना

16. योग शिक्षा का उत्तम प्रबन्ध

17. जनसंख्या शिक्षा/पर्यावरण शिक्षा/कार्यानुभव को महत्व।

18. विज्ञान की शिक्षा पर बल

19. युवाओं की भूमिका का सशक्तीकरण

20. भारतीय शिक्षा सेवा का संचालन

21. शिक्षण की नवीन विधियों तथा शैक्षिक तकनीकी एवं प्रबन्धन का विस्तार

22. मानवाधिकार

NOTES

भारतीय विज्ञान कॉग्रेस का दृष्टिकोण :

NOTES

भारतीय समाज में व्याप्त बुराईयों के निराकरण तथा उदीयमान भारतीय समाज की विशिष्टताओं को उच्चतर बनाने के लिए मशेलकर महोदय ने जनवरी 2000 के भारतीय विज्ञान कॉग्रेस में निम्नवत् सुझााव उद्घाटित किया –

1. महिला केन्द्रित परिवार
2. बाल केन्द्रित शिक्षा
3. मानवीयता केन्द्रित विकास
4. समुदाय केन्द्रित समाज
5. अभिनव परिवर्तनशील भारत

यूनेस्को के तत्वाधान में जैक डेलोर्स आयोग निम्नलिखत चार स्तम्भों द्वारा शिक्षा की रूप रेखा बनाने का आहवाहन किया है–

1. जानने के लिए शिक्षा
2. कार्य करने के लिए शिक्षा
3. बनने के लिए शिक्षा
4. मिलकर रहने के लिए शिक्षा

वास्तव में राष्ट्रीय शिक्षा नीति मशेलकर तथा डेलोर्स आयोग द्वारा शिक्षा विषयक जो विचार दिये गये है। उनका अनुपालन करते हुए एक उन्नत विकसित भारत का निर्माण किया जा सकता है। यह ऐसे उत्कृष्ठ समाजों से गुच्छित राष्ट्र होगा जिसमें नागरिकों में प्रज्ञा–प्रपन्नता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मूल्यवादी भावना तथा आर्थिक समृद्धि का उत्कृष्ट अभिलाषा, समर्पण तथा निष्ठा होगी।

यूनिट–2

NOTES

समाजिक अन्तः क्रिया अर्थ एवं परिभाषा :

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसके लिए अकेला रहना कठिन है। समूह के सदस्य के रूप में वह एक विशेष प्रकार से कार्य एवं व्यवहार करता है। सामान्यतः दो या दो से अधिक व्यक्तियों के एक दूसरे के सम्पर्क में आने पर अंतः क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। एक व्यक्ति और समूहों के बीच सम्बन्धों का अधार अंतःक्रिया ही है। सम्बन्धों की पारम्परिकता के कारण उचित व्यक्ति अन्य लोगों को प्रभावित ही नही करता बल्कि उनसे प्रभावित भी होता है। समाजशास्त्रीय जीवन में सभव नहीं है। दूसरे शब्दों में अंतःक्रिया सामाजिक सम्बन्धों की मूल आवश्यकता है। इस प्रकार हम कह सकते है कि सामाजिक व्यक्तियों में परस्पर सम्पर्क और संचार के फलस्वरूप जो क्रिया एवं प्रतिक्रिया होती है उसे सामाजिक अंतःक्रिया कहा जाता है।

सामाजिक अंतःक्रिया की परिभाषाएं :

(Definitions of Social Interaction)

जोनाथन टर्नर (Jonathan Turner) के अनुसार "अंतःक्रिया वह सामाजिक प्रक्रिया है जो व्यक्तियों को पारस्परिक रूप से प्रभावित करती है। और ऐसा करने से लोग संयुक्त क्रियाओं (Joint Action) के प्रतिमान में नई क्रियाओं की शुरूआत करते है।, उनमें परिवर्तन लाते हैं या इन क्रियाओं को बन्द कर देते है। तात्पर्य यह है कि जन्म के बाद ही लोगों में अंतःक्रिया प्रारम्भ हो जाती है।"

डॉसन एवं गेटिस (Dawson & Geittys) के अनुसार "सामाजिक अंतःक्रिया वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के मस्तिष्क की आंतरिक बातों का पता लगा लेता है।"

पार्क एवं बर्गेस (Park & Burgess) के अनुसार "सामाजिक अंतःक्रिया द्विपक्षीय है–व्यक्तियों का व्यक्तियों पर प्रभाव तथा समूहों का समूहों पर प्रभाव।"

ग्रीन (Green) के अनुसार "सामाजिक अंतःक्रिया वे पारस्परिक प्रभाव है जो व्यक्ति एवं समूह अपनी समस्याओं को हल करने एवं अपने लक्ष्यों की पूर्ति के प्रयत्न में एक दूसरे पर डालते हैं।

NOTES

मेरिल एवं एलड्रिज (Merrill & Eldredge) के अनुसार "सामाजिक अंतःक्रिया वह सामान्य प्रक्रिया है जिसके द्वारा दो अथवा अधिक व्यक्तियों में परस्पर एक अर्थपूर्ण सम्पर्क होता है। जिसके फलस्वरूप उनके व्यवहारों में कुछ संशोधन हो जाता है। चाहे इस संशोधन की मात्रा कितनी ही कम क्यों न हों।"

गिलिन एवं गिलिन (Gillin & Gillin) के अनुसार "सामाजिक अंतःक्रिया का अर्थ उन सभी प्रकार के गत्यात्मक सामाजिक सम्बन्धों से है जो व्यक्ति एवं व्यक्ति, समूह और समूह अथवा व्यक्ति तथा समूह के बीच में हो।"

एलड्रिज (Eldrdge) के अनुसार "सामाजिक अंतःक्रिया वह आपसी प्रभाव होता है जिसे व्यक्ति परस्पर उत्तेजना एपं प्रतिवचन के द्वारा एक दूसरे पर डालते है।"

गिस्ट (Gist) के अनुसार "सामाजिक अंतःक्रिया व पारस्परिक प्रभाव है जो मनुष्य परस्पर उत्तेजना और अनक्रिया के द्वारा एक दूसरे पर डालते हैं।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि सामाजिक अंतःक्रिया व्यक्तियों या समूहों के बीच पाये जाने वाले सामाजिक सम्बन्धों का निर्देश करती है। जिससे व्यक्तियों के बीच पारस्परिक अनुक्रिया होती है। वे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से एक दूसरे को प्रभावित करते है जिससे उनके व्यवहार में कुछ संशोधन हो जाता है। इसी पारस्परिक रूप से एक दूसरे को प्रभावित करने की क्रिया को सामाजिक अंतःक्रिया कहते है। गिलिन एवं गिलिन ने स्वीकार किया है कि सामाजिक सम्पर्क अंतःक्रिया की प्रथम अवस्था है।

सामाजिक अंतःक्रिया के प्रकार :

सामाजिक अन्तःक्रिया के मुख्यतः निम्नलिखित तीन प्रकार बताये गये हैं–

1. व्यक्ति और व्यक्ति के बीच अंतःक्रिया (Individual to Individual Interaction)

छात्र और शिक्षक के बीच अथवा एक छात्र और दूसरे छात्र के अन्तःक्रिया होती है, वह इसी श्रेणी की अन्तःक्रिया है।

2. व्यक्ति और समूह के बीच अन्तःक्रिया (Interaction between individual and Group)

शिक्षक और कक्षा–समूह मानीटर और कक्षा समूह अथवा किसी एक छात्र और कक्षा के बीच होने वाली अन्तःक्रिया को इस श्रेणी के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

3. समूह और समूह के बीच अन्तःक्रिया (Croup to Group interaction)

एक कक्षा और दूसरी कक्षा के बीच अथवा एक विद्यालय और दूसरे विद्यालय के बीच होने वाली अन्तःक्रियाएं इस श्रेणी के अन्तर्गत आती है।

NOTES

सामालिक अन्तःक्रिया के पॉच स्वरूप (Forms) है जिन्हें सामाजिक प्रक्रियाएं (Social Process) भी कहा जाता हैं। यथा (1) सहयोग, (2) प्रतिस्पर्धा, (3) संघर्ष, (4) व्यवस्थापन, (5) सात्मीकरण। इनमें से संघर्ष के अतिरिक्त शेष चार सामाजिक प्रक्रियायें बालक की शिक्षा और सामाजिक विकास में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। व्यक्ति–व्यक्ति में या समूह में सदैव प्रेम या सहयोग ही बना रहे, यह आवश्यक नहीं है। प्रतिस्पर्धा आदि के कारण प्रायः संघर्ष की स्थिति आ जाती है। संघर्ष के परिणाम संगठनात्मक और विघटनात्मक दोनों ही होते हैं। समूह–समूह के बीच संघर्ष की स्थिति में इसका परिणाम विघटनात्मक होता है। सहयोग और प्रतिस्पर्धा आदि का परिणाम शिक्षा के हित में प्रायः सकरात्मक (Positive) होता है।

सामाजिक अन्तःक्रियाओं के शैक्षिक निहितार्थ

शिक्षा विकास की अनवरत् प्रक्रिया है जो सामाजिक वातावरण में सम्भव होती है। इस प्रक्रिया में सामाजिक अन्तःक्रिया का महत्वपूर्ण स्थान है। विद्यालय में कई प्रकार के समूह होते है। जैसे विषय समितियॉ, साहित्यिक परिषद, क्रीडा परिषद आदि। इन समूहों में कक्षा समूह का विशेष महत्व है। शिक्षा में समूह मनोविज्ञान का महत्व निम्नलिखित रूप में व्यक्त किया जा सकता है–

1. सामाजिकता का विकास : समूह मनोविज्ञान द्वारा सामाजिक जीवन की परिस्थितियों का ज्ञान होता है। इसकी सहायता से ही बालकों में समूह मन और सामाजिकता का विकास किया जा सकता है। बालक कक्षा समूह में रहकर आदर्शो, सद्‌गुणों एवं आदतों का आदान–प्रदान करता है। शिक्षा में समाजीकरण की प्रक्रिया में समूह मनोविज्ञान ही विशेष रूप से सहायक होता है।
2. प्रेरणा प्राप्त करना : कक्षा समूह के सदस्य एक दूसरे की उपलिब्धयो से कार्य करने की प्रेरणा प्रापत करते हैं।
3. मानसिक क्रियाओं का विकास : कक्षा समूह में परस्पर विचारों के आदान – प्रदान से बालकों में तर्क, निर्णय करना, स्मृति – चिन्तन आदि शक्तियों का विकास होता है।

NOTES

4. आत्म त्याग की भावना का विकास : कक्षा में विद्यार्थियों में निकट सम्पर्क होने के कारण उनमें परस्पर प्रेम और इतनी सद्भावना उत्पन्न होती है कि ये आवश्यकता पड़ने पर एक दूसरे के लिए बड़े से बड़ा त्याग करने को तैयार रहते हैं।

5. व्यवहार कुशलता की प्राप्ति : विद्यालय तथा कक्षा समूह में रहकर वे व्यवहार कुशल बनते है।

6. सहयोग की भावना का विकास : समूह में सदा साथ–साथ रहने के कारण उनमें सदा विचारों का आदान – प्रदान होता रहता है। वे अनुकरण, सहानुभूति और निर्देश प्रवृत्ति से प्रभावित होते रहते है। इस प्रकार उनमें सहयोग की भावना का विकास होता है।

7. प्रतियोगिता की भावना का विकास : समूह में रहकर ही बालकों में प्रतियोगिता की भावना का विकास होता है और अनुकरण की आदतों का निर्माण होता है। इससे वे अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।

8. नेतृत्व के गुणों का विकास : नेतृत्व का शिक्षा के लिए–समूह मनोविज्ञान बहुत ही उपयोगी सिद्ध होता है। पाठ्यविषयान्तर क्रियाओं के द्वारा नेतृत्व के गुणों का विकास होता है।

9. मनोबल ऊँचा होना : समूह मन के प्रभाव से विद्यार्थियों में निराशा नही ओ पाती है और उनका मनोबल ऊँचारहता है। इस शक्ति से वे उद्देश्य की प्राप्ति के लिए के लिए प्रयत्नशील रहते हैं।

उपर्युक्त विवेचन के उपरान्त हम कह सकते है कि विद्यालय में शैक्षिक वातावरण समूह मन के विकास मे बहुत सहायता देता है। सामाजिक शिक्षा प्रदान करने के लिए कक्षा का वातावरण सक्रिय सहयोग देता है।

सामाजिक समूह अर्थ एवं परिभाषा :

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। उसके जीवन में प्रारम्भ से ही समाज उसके साथ रहता है। वह अकेले नहीं रह सकता। समाज का जीवन सहयोग है। सामजशास्त्रीय ग्रीन ने समाज का अर्थ इस प्रकार स्पष्ट किया है। ''एक समाज किसी भी व्यक्ति के रहने का दीर्घतम समूह होता है। एक समाज का निर्माण जनसंख्या, संगठन समय स्थान तथा रूचियों द्वारा होता है।''

:A social group is the largest group to which any individual belongs. A society is made up of a population, organization, time place and interest." -A.W. Green

NOTES

समाज के सदस्यों का पारस्परिक सम्बन्ध सहयोग की भावना ही आधारित होता है। व्यक्ति के आचरण–व्यवहार का सामाजिक महत्व होता है। उसके आचरण–व्वहार को समाज में ही देखा जा सकता है और उसका मूल्यांकन भी सामाजिक दृष्टि से किया जाता है। इसलिए समाज की अविधिक और सविधिक संस्थाएं सामाजिकता के विकास के लिए वातावरण तैयार करती है। सामाजिक शब्द का अर्थ, समूह के प्रति जागरूकता से है। सामाजिक व्यक्ति उसे कहते हैं जो सहयोग के आधार पर सामाजिक सम्बन्धों की स्थापना समूह के हित के उद्देश्य से करता है। समाजीकरण द्वारा ही व्यक्ति और समाज में समन्वय स्थापित किया जा सकता है। समाजीकरण शिक्षा द्वारा ही सम्भव है। व्यक्ति का विकास सामाजिक पृष्ठभूमि में होता है। चाल्स एलवुड ने कहा है कि– "सामाजीकरण एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्तियों, अपने समूहों और दूसरे समूहों के साथ सच्चा और हितकर एकाकार है।

"Socialization is genuine and wholesome identification of a person with the welfare of other persons of his own group and of other groups."

समूह का अर्थ एवं परिभाषा :

सामाजिक प्राणी होने के नाते मनुष्य बिना पारस्परिक सहायता के अपना कोई कार्य नहीं कर सकता है। अपने सवार्थो की पूर्ति के लिए उसे दूसरे व्यक्तियों से सम्बन्ध बनाना पड़ता है। इस प्रकार जो सम्बन्ध वह अपने समीप सम्पर्क में आने वाले लोगों से करता है, वह एक समूह का रूप धारण कर लेता है। व्यक्ति का विकास सामाजिक सम्बन्धों में ही होता है। समूह समाज का एक अंग है। समूह के अथ को स्पष्ट करने के लिए विद्वानों ने निम्नलिखित परिभाषाएं दी है–

1. आगबर्न व निमकाफ : "जब कभी दो या अधिक व्यक्ति एकत्रित हो जाते है एवं एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं तो वे एक सामाजिक समूह का निर्माण करते है।"

   "Whenever two or more individuals come together and influence one another they may he said to constitute a social Groups."

NOTES

2. मैकाइवर और पेज : ''समूह से हमारा अभिप्राय व्यक्तियों के किसी भी ऐसे संग्रह (एकत्रीकरण या जमाव) से है जो कि परस्पर एक दूसरे के साथ सामाजिक सम्बन्ध में आते हैं।''

   "By group we mean a collection of human beings who are brought into social relations with one another."

3. क्यूवर : ''समूह पारस्परिक संचार वाले मनुष्यों की कितनी भी संख्या को कहते है।

   " A Group in any number of human beings is reciprocal communication"

4. जिसबर्ट : ''एक सामाजिक समूह व्यक्तियों का वह संकलन है जो कि मान्यता प्राप्त संरचना के अन्तर्गत एक दूसरे पर अन्तःक्रिया करें।''

   "A social group is a collection of individuals interaction on each other under a recognizable structures."

5. एडवर्ड शापिर : ''किसी समूह का निर्माण इस तथ्य पर आधारित होता है कि कोई न कोई स्वार्थ समूह के सदस्यों को परस्पर बॉधे रखता है।''

   "Any group is constituted by the fact that there is some interest which holds its members together."

6. बोगार्डस् : ''सामाजिक समूह का विचार दो या अधिक व्यक्तियों की एक ऐसी संस्था में निहित है जिसका ध्यान कुछ सामान्य उद्देश्यों पर हो तथा जो एक दूसरे को प्रेरणा दें जिनमें सामान्य भक्ति हो,जो सामान्य क्रियाओं में सम्मिलित हों।''

   "A Social group may be thought of as number or persons two or more who have some common objects of attention who are stimulated to each other who have a common loyalty and participate in similar activities."

7. कैली एवं तिबौट : "व्यक्तियों का संगठन ही समूह हो जाता ह। इसके सदस्य सामान्य उद्देश्य स्वीकार करते है। इसकी सम्प्राप्ति में वे आपस में क्रिया–प्रतिक्रिया करते एवं प्रगति करते हैं।"

NOTES

"A collection of individual becomes a group as the members accept a common task inter dependent in its performance and interact with one another to promote its a accomplishment."

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि समूह के अन्तर्गत परस्पर सम्बन्धीकरण की भावना दिखाई देती है। समूह में सामाजिक और मनोवैज्ञानिक दोनो तत्व पाये जाते हैं। समूह भावना में निहित व्यक्तिगत भावनाएं अत्याधिक महत्वपूर्ण होती है। इन्हीं भावनाओं के आधार पर व्यक्ति समूह हित के लिए प्रेरित होता है। समूह सम्बन्धी भावना के महत्व पर प्रकाश डालते हुए मैक्डूगल ने कहा है– "समूह सम्बन्धी और समूह के एक सदस्य की दृष्टि से आत्म सम्बन्धी चेतना व्यक्ति को बल और विश्वास देती है, सहानुभूति और सहयोग की आशा दिलाती है तथा एक ऐसी नैतिक व भौतिक सम्बल प्रदान करती है जिसके बिना सम्भवतः मानव संसार के थपेडों का सामना न कर पाता।" स्पष्ट है कि परस्पर सम्बन्धीकरण की भावना हमें समूह के अन्दर दिखाई देती है। प्रत्येक सामाजिक या सामूहिक क्रिया या घटना में एक मनोवैज्ञानिक पक्ष पर बल दिया जाता है। व्यक्ति की क्रियाओं, इच्छाओं और आवश्यकताओं आदि का एक सामाजिक पक्ष होता है, किन्तु इस सामाजिक आधार से मनोवैाज्ञानिक तत्व अलग नहीं होता। मनुष्य समूह में ही अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है और उसे आन्तरिक संतुष्टि मिलती है। यह सन्तुष्टि उसे और कुछ करने के लिए प्रेरणा देती है। किसी न किसी प्रकार के सम्बन्धों के आधार पर ही समूह का निर्माण होता है। समूह का निर्माण मानव की आवश्यकताओं के अनुसार होता है। इन्ही आवश्यकताओं के आधार पर समूह दो प्रकार के होते हैं।

(क) प्राथमिक समूह : इसमें अनिवार्य सदस्यता वाले समूह आ जाते है, जैसे परिवार, राष्ट्र, राज्य, समाज समुदाय आदि।

(ख) द्वितीय समूह : इसमें सदस्यात ऐच्छिक होती है जैसे विद्यालय, क्लब, धार्मिक संस्थायें, राजनैतिक संघ व मनोरंजन सम्बन्धी संस्थाऐं। साधारण भाषा में समूह का लोक प्रचलित अर्थ मनुष्यों के जमाव व एकत्रीकरण से है, किन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इसे समूह नहीं कहा जा सकता, उदाहरणार्थ सडक या चौराहे पर मनुष्य के झुण्ड या भीड को समूह नहीं कहेंगें। ली

NOTES

बॉन के अनुसार "समूह उन व्यक्तियों के समुदाय को कहेगें जो एक ही दिशा में विचारते एवं अनुभव करते हैं" मैक्डूगल ने भी कहा है कि मनोवैज्ञानिक समूह का मुख्य लक्षण है कि समुदाय एक साथ काम करें, अनुसूचित करे और विचार करें।

सामाजिक समूह की विशेषताएं:

समूह में निम्नलिखित विशेषताएं पाई जाती है–

1. समान उद्देश्य या दृष्टिकोण : समूह के सदस्यों का ध्यान समान उद्देश्य की ओर होता है। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उनमें पारस्परिक सद्भावना पाई जाती हे। इस सद्भावना के आधार पर घनिष्ठता बढ़ती है।

2. एकता और सहयोग की भावना : समूह में एकता की भावना पाई जाती है।, जिसके आधार पर समान स्वार्थो के लिए आवश्यक नहीं है कि कोई सदस्य व्यक्तिगत रूप से आमने–सामने हों। समूह के सदस्यों का सम्बन्ध प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष दोनों हो सकता है।

3. पारस्परिक जागरूकता (Mutual Awareness): यह सामूहिक सम्बन्ध का आधार है। 'इस जागरूकता के लिए आवश्यक नहीं कि कोई सदस्य व्यक्तिगत रूप से आमने सामने हों। समूह के सदस्यों का सम्बन्ध प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष दोनों हो सकता है।

4. हम भावना (We Feeling) : प्रत्येक समूह में 'हम भावना' पाई जाती है। इस भावना से प्रेरित होकर ही व्यक्ति एक दूसरे के सहायतार्थ कार्य करता है तथा अपने स्वार्थो पर ध्यान न देकर अन्य सदस्यों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करता है। पारस्परिक स्वार्थो की पूति के लिए सहानुभूति तथा हम भावना को होना आवश्यक है। इस प्रकार समूह का प्रत्येक सदस्य समूह के उद्देश्य में ही अपने उद्देश्यों को देखने लगता है। यह 'हम भावना' का मनोवैज्ञानिक परिणाम है। घनिष्ठ सम्बन्धों के कारण सदस्यों का व्यक्तित्व समूह में घुल मिल जाता है और वे सामुदायिक जीवन व्यतीत करते हैं।

5. घनिष्ठता, परस्पर सहिष्णुता औश्र सहकारिता की भावना : समूह के सदस्यों में घनिष्ठता पाई जाती है। उसमें निरन्तर सहिस्णुता और सामंजस्य की भावना का विकास होता रहता है। समान उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए वे सहकारिता की भावना से प्रेरित होकर कार्य करते हैं।

6. मनोवैज्ञानिक और सामाजिक अन्तःक्रियाः मनोवैज्ञानिक सम्बन्धों के आधार पर समूह का निर्माण होता है। मनोवैज्ञानिक समूह बनने के लिए आवश्यक है कि समस्त सदस्यों के विचारों, भावनाओं, अनुभूतियों और कार्य करने की दिशा और ढंग एक समान हो। सामाजिक अन्तःक्रिया का अभिप्राय उस पारस्परिक प्रभाव से है जो समस्याओं के समाधान और लक्ष्यों की पूर्ति के प्रयन्त में समूह के सदस्य एक दूसरे पर डालते हैं।

NOTES

7. सामूहिक शक्ति की अनुभूति : समूह में रहकर व्यक्ति एक ऐसी शक्ति का अनुभव करता है। जिसके प्रभाव से वह कोई भी कार्य करने को तैयार हो जाता है।

8. आदर्शो और मूल्यों में समानता : समूह में कुछ समान आदर्श और मूल्य होते हैं जिन्हें प्रत्येक सदस्य को मानना आवश्यक होता है।

9. सामूहिक नियन्त्रण : प्रत्येक समूह में कुछ अपनी प्रथाएं, परम्पराएं और नियम सर्वमान्य होते हैं जिनका पालन करना प्रत्येक सदस्य के लिए अनिवार्य होता है। इन परम्पराओं और नियमों का उल्लंघन करने पर समूह में किसी न किसी प्रकार का दण्ड विधान भी होता है।

10. सामान्य आस्था : समूह के सदस्यों में समूह के प्रति एक प्रकार की भक्ति भावना का विकास हो जाता है और उनमें समूह की प्रतिष्ठा को बनाये रखने के लिए संवेगात्मक उत्साह बना रहता है।

सामाजिक समूह के प्रकार :

व्यक्ति किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए किसी प्रयोजन के लिए या कुछ आदर्शो की रक्षा के लिए एक समूह का निर्माण कर लेते है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से व्यक्तियों के एकत्रीकरण के अनेक भेद किये गये है। मानसिक विकास के तीन स्तर बताये गये है– प्रत्यक्षात्मक, विचारात्मक और विवेकात्मक। ड्रेवर महोदय ने समूह के निम्नलिखित प्रकार बतायें हैं–

1. भीड़ रूपी समूह (Crowd Type Group) :

यह प्रत्यक्षात्मक कोटि का समूह है। यह समूह स्थायी नहीं होता। यह असंगठित समूह होता है। किसी अप्रत्याशित या उत्तेजनात्मक घटना के फलस्वरूप लोग उत्सुकतावश एकत्रित हो जाते है और उत्सुकता या उत्तेजना शानत होते ही पुनः तितर बितर हो जाते हैं इस प्रकार यह अस्थिर समूह है जो किसी सामान्य रूचि के फलस्वरूप स्वतः बन जाता है और शीघ्र ही

NOTES

समाप्त हो जाता है। उदाहरणार्थ जब सडक पर मोटर और सयकिल सवार घायल हो जाता है तब इस दुर्घटना स्थल पर सड़क पर चलने वाले व्यक्ति एकत्रित हो जाते हैं और वे सामान्य प्रवृत्तियों के आधार पर क्रियाशील हो जाते हैं। उन सभी का ध्यान दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति की ओर केन्द्रित हो जाता है। सभी एक ही प्रकार से सोचने लगते हैं – दुर्घटना कैसे हुई? मोटर चालक का दोष है? घायल को अस्पताल पहुॅचाना चाहिए। यहॉ एकत्रित हुए सभी सदस्यों का एक ही प्रयोजन और उद्देश्य था, किन्तु उत्सुकता शांत होते ही पुनः अलग हो जाते है। इस प्रकार का प्रयोजन और उद्देश्य भी अस्थायी होता है, पूर्व निश्चित नहीं होता।

2. गोष्ठी रूप समूह (Club Type Group) :

यह समूह विचारात्मक स्तर पर होता है। यह समूह भीड समूह की अपेक्षा अधिक स्थायी होता है। गोष्ठ के उद्दश्यों का निर्धारण पहले से कर लिया जाता है। गोष्ठी, संगीत, साहित्य, कला, धर्म, राजनीति, खेल आदि से सम्बन्धित होती है। एक व्यक्ति कई गोष्ठियों का सदस्य हो सकता है। एक गोष्ठी के सभी सदस्यों की समान रूचियॉ, स्थायी भाव एवं उद्देश्य होते हैं। सामान्य रूचियॉ व आदर्श गोष्ठी के सदस्यों को एक सामुदायिक जीवन में बॉध देते हैं। गोष्ठी के कुछ नियम भी होते हैं जिनका पालन सभी सदस्यों को करना पड़ता है।

3. समाज या समुदाय रूपी समूह (Community type Group) :

इसे विवेकात्मक स्तर का समूह कहा गया है। यह उच्च कोटि का समूह है। इस समूह का व्यापक उद्देश्य तथा निश्चित आदर्श होता है। इसमें व्यक्ति हित और समाज हित में समन्वय दिखाई देता है। व्यक्ति अपना विकास करता हुआ समाज हित के लिए भी जागरूक रहता है, जैसे राष्ट्र समूह में व्यक्ति राष्ट्र के प्रति सजग रहता हुआ अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है। ड्रेवर का विचार है– '' ऐसा सामाजिक समूह उत्कृष्ट मनोवैज्ञानिक विकास पर पहुॅचा हुआ होता है। इसमें केवल कुछ सामान्य परम्परा तथा स्थायी भाव ही नहीं होते, वरन् कुछ प्रयोजन और आदर्श भी होते हैं।''

समाज के अन्तर्गत व्यक्ति के जीवन का कोई विशिष्ट अंग ही नही आता, वरन् उसकी जीवन सम्बन्धी सारी बाते आ जाती हैं।

समूह मन का अर्थ एवं महत्व :

व्यक्ति जब समूह में नही रहता तब उसके विचारों और कार्यो का संचालन तथा नियंत्रण उसका केवल मन करता है। किन्तु जब वह किसी समूह का सदस्य बन जाता है, तब

समूह में कुछ ऐसी शक्तियॉ उत्पन्न हो जाती है। जो व्यक्तिगत प्रयोजनों से नहीं उत्पन्न होती है। सामूहिक क्रिया ऐसे प्रभाव उत्पन्न करती है जो व्यक्तिगत शक्ति से परे होती है। इन प्रभावों के फलस्वरूप कुछ ऐसे नियम बन जाते है जो कि समूह व्यवहार का निर्देशन करते है। जिस प्रकार वैयक्तिक मन व्यक्तिगत व्यवहार का नियन्त्रण समूह मन करता है। समूह का सदस्य बनने पर व्यक्तिगत चेतना के स्थान पर सामूहिक चेतना विकसित हो जाती हैं। समूह मन व्यक्तिगत मन से भिन्न होता है। ली बॉन ने कहा है "जब मानव, समूह में आता है तो वह समूह मन का अनुभव करता है उसके अनुभव, चिन्तन तथा कार्य उसके नितान्त व्यक्तिगत रूप से कार्य करने की स्थिति से भिन्न होते हैं।" समूह में आकर वैयक्तिक मन का स्थान समूह मन में ले लेता है। माथुर के अनुसार "समूह में व्यक्ति अपनी वैयक्तिकता खो देते है और उनके मन आपस में विलयन करके एक नये मत को स्थान दे देते हैं जिसे समूह मन कहते हैं।

NOTES

उपर्युक्त विवेचन को ध्या में रखते हुए कहा जा सकता है। कि जो मन समूह के व्यवहार के पीछे कार्य करता है उसे मनोवैज्ञानिक दृष्टि से समूह मन कहते हैं। समूह मन एक ऐसा मानसिक संगठन और एक शक्तियों की व्यवस्था है जिसके कारण समूह के सदस्य व्यक्तिगत अस्तित्व रखते हुए भी एक ही प्रकार की क्रिया या व्यवहार करते है। समूह और समूह मन का अर्थ स्पष्ट हो जाने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुॅचते है कि "सामूहिक व्यवहार का अध्ययन करने वाले विज्ञान को समूह मनोविज्ञान कहते हैं" समूह मनोविज्ञान समूह मन और सामाजिक समूह के व्यवहार और क्रियाओं का अध्ययन करता है।

समूह मनोविज्ञान का प्रभाव व्यक्ति तथा समाज के लिए लाभप्रद तथा हानिप्रद दोनों सिद्ध हो सकता है। किसी राष्ट्र या समाज की प्रगति समूह मन पर निर्भर करती है। विदेशी आक्रमण या युद्ध के समय समूह मन ही देश की रक्षा के लिए राष्ट्र समूह के मनोबल को ऊँचा करता है और देशभक्ति की भावना से प्रेरित होकर प्रत्येक सदस्य राष्ट्र के संकट का सामना करने के लिए तत्पर हो उठते है। समूह मनोविज्ञान की सहायता से ही विश्व के राजनीतिज्ञों ने सफलता प्राप्त की है।

समूह में व्यक्ति का व्यवहार सामान्य प्रवृत्तियों, अनुकरण, संकेत और सहानुभूति द्वारा प्रभावित होता रहता है इनके कारण वह दूसरों की भावनाओं, विचारों तथा क्रियाओं को ग्रहण करने लगता है। इस प्रकार वह व्यक्तिगत मनोवृत्तियों की ओर ध्यान नहीं पाता। उसके

मानसिक लक्षण समूह में विलय हो जाते हैं। इस प्रकार समूह में व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को खो बैठते हैं।

NOTES

नेतृत्व के अभाव में यदि समूह का मूल प्रवृत्यात्मक व्यवहार निम्न स्तर का होता है तो सभी सछसय उससे प्रभावित होते हैं। यदि समूह शिक्षित वर्ग का होता है तो उसकी मानसिक और बौद्धिक क्षमता समूह की मनोवृत्ति में दिखाई देती है। यदि किसी समूह के सदस्यों का मानसिक स्तर निम्न होता है तो उनकी मनोवृत्ति और व्यवहार भी निम्न स्तर का दिखाई देता है। नेतृत्व के अभाव में सामूहिक व्यवहार व्यक्तिगत व्यवहार की अपेक्षा निम्न स्तर का होता है।

सामाजिक समूह की शैक्षिक भूमिका :

कक्षा कक्ष समूह की शैक्षिक भूमिकाएं निम्नलिखि हैं–

1. कक्षा कक्ष समूह की सर्वप्रथम भूमिका अधिगम से सम्बद्ध विभिन्न क्रियाओं, प्रत्यक्षीकरण, स्मृति कल्पन, चिन्तन, तर्क तथा निर्णय शक्ति का विकास करना है।
2. कक्षा–कक्ष समूह अभिप्रेरक का भी कार्य करता है, कक्षा में छात्र एक दूसरे के कार्यो को देखकर प्रेरणा प्राप्त करते है। इस प्रकार कक्षा–कक्ष समूह अपने साथियों को शक्ति प्रदान करते हैं।
3. समस्या–समाधान में कक्षा–कक्ष समूह की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। कक्षा के सभी सदस्य किसी समस्या के समाधान हेतु अपने–अपने मत विचार एवं सुझाव प्रस्तुत करते हैं और किसी एक निष्कर्ष पर पहुॅच जाते हैं।
4. कक्षा–कक्ष समूह अपने सदस्यों को समस्या समाधान खोजने, सूचनाओं के संगह करने तथा उनका विश्लेषण एवं परीक्षण का अवसर प्रदान करता है।
5. कक्षा–कक्ष समूह अध्यापक की देख–रेख और निर्देशन में विद्यार्थियों को अधिगम के लिए क्रियाशील बनाए रखता है।
6. कक्षा–कक्ष समूह छात्रों में प्रतिस्पर्धा की भावना के विकास का अवसर प्रदान करता है। एक विद्यार्थी एक दूसरे की प्रगति से प्रेरित होकर उससे अधिक. सीखने और आगे बढ़ने का प्रयास करता है।
7. कक्षा–कक्ष समूह जीवन में आगे गढ़ने के साधन के रूप में भी कार्य करता है। कक्षा में ही बालक की अनेक मानसिक और सामाजिक शक्तियॉ और विकसित

होती है। इसी समूह में बालक प्रशिक्षित होकर अपने जीवन का मार्ग निश्चित करता है।

8. कक्षा – कक्ष समूह बालकों में विभिन्न प्रकार की सूचनाओं के संग्रह तथा उनके प्रयोग का अवसर प्रदान करता है और इस प्रकार समस्या–समाधान के प्रयोग और निर्णय का अवसर विद्यार्थियों को प्राप्त हो जाता है।

NOTES

समूह गति विज्ञान अर्थ एवं परिभाषा :

(Meaning and Definition of Group Dynamics)

समूह गति विज्ञान का अर्थ समझने के लिए हमें सर्वप्रथम समूह का अर्थ एवं विशेषताएं आदि जान लेना चाहिए। समूह के अर्थ एवं विशेषताओं का अध्ययन हम चूँकि पिछले अध्याय "समूह मनोविज्ञान" के अन्तर्गत कर चुके हैं। अतः यहाँ पर उसकी पुनरावृत्ति करना उचित नहीं है। यहाँ तो हम सर्वश्री आगबर्न तथा निमकॉफ (Ogburn and Nimkoff) के शब्दों में सिर्फ इतना कहना चाहेंगे कि "जब कभी दो या दो से अधिक व्यक्ति एक साथ मिलते है और एक दूसरे को प्रभावित करते है, तो वे एक सामाजिक समूह का निर्माण करते है।" समूह का समान उद्देश्य होता है, समूह के सदस्य अनयोन्याश्रित होते हैं और परस्पर क्रिया करते है। समूह में सामाजिक मेल–जोल, विचारों का आदान–प्रदान, सम्बन्धों का दृढत्र होना आदि पाया जाता है। एक अन्तर्सम्बद्धता का पाया जाना तथा नेतृत्व और अनुगमन की भावना का होना भी समूह की विशेषता है। समूह में व्यक्ति का व्यवहार भिन्न होता है।

मानव प्राणी एक क्रियाशील एवं गतिशील प्राणी है। वह समूह का निर्माण करता है। समूह समाज का ही एक अंग है। इस प्रकार व्यक्ति समूह और समाज एक दूसरे से सम्बन्धित है। एक के अभाव में दूसरे के अस्तित्व की कल्पना ही नहीं की जा सकती। चूँकि मानव क्रियाशील और गतिशील है और वही समूह का निर्माण करता है। अतः समूह भी कोई स्थिर अवधारणा न होकर एक क्रियाशील और गतिशील या परिवर्तनशील अवधारणा है, समूह की क्रियाशीलता, गतिशीलता और चिन्तनशीलता के ही कारण उसमें परिवर्तन होते रहते हैं और सदस्यो का व्यवहार परिवर्तित होता रहता है। इन्ही सबका वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन करना ही समूह गति विज्ञान है।

गति विज्ञान की अवधारणा सर्वप्रथम श्री कुर्टलिविन (Kurtlewin) ने की थी। आपके अनुसार समूह के अन्दर (Within the Group) जो परिवर्तन होते हैं उन्हें समूह की

NOTES

गतिशीलता कहा जाता है। प्रो0 ट्रो ने समूह गति–विज्ञान को परिभाषित करते हुए लिखा है कि – ''समूह गति–विज्ञान एक वैज्ञानिक अध्ययन है जो कि विभिन्न समूह सम्बन्धों में व्यक्ति के व्यवहार और विभिन्न आन्तरिक एवं बाह्य परिस्थितियों के अन्तर्गत समूह प्रक्रियाओं का कभी–कभी उनकी प्रभावकारिता को बढ़ाने के विचार से अध्ययन करता है।

"Group dynamics is the scientific study of the behavriour of individual in various group relationships under varying internal and external conditions, sometimes with a view to improving their effectiveness."

प्रो0 ट्रो के उक्त कथन से स्पष्ट है कि समूह गति विज्ञान वैज्ञानिक ढंग से जानने का प्रयास करता है कि समूह की विभिन्न आन्तरिक एवं बाह्य दशाओं मे व्यक्ति का व्यवहार और सामूहिक प्रक्रियाएं किस प्रकार होती है तथा वह कौन सी शक्ति है जो समूह के निर्माण में सहायक होती है। समूह की प्रभावकारिता को बढाने के विचार से भी यह अध्ययन उसके लिए आवश्यक हो जाता है। सरल शब्दों में हम कह सकते हैं कि समूह का निर्माण व्यक्ति की सामाजिक अन्तर्क्रिया और अन्तर्सम्बन्धों की गतिशीलता के फलस्वरूप होता है। इसी प्रकार के विचार श्री उदय पारिख (Udaipareek) ने भी प्रकट किये है। अपने समूह गति–विज्ञान को एक ऐसा विज्ञान माना है जो कि एक समूह के सदस्य के रूप में व्यक्ति की अन्तःक्रियात्मक प्रक्रियाओं का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन करता है। (It is a science which studies scientifcally the interactional process of the individual) श्री एस0एस0 माथुर ने और भी स्पष्ट करते हुए लिखा है कि ''समूह गति विज्ञान उन शक्तियों की जानकारी प्रदान करता है जो एक समूह में सक्रिय होती है। उन शक्तियों का अध्ययन समूह गति–विज्ञान के अन्वेषण का विषय होता है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि समूह गति विज्ञान समूह व्यवहार को परिचालित करने वाली शक्तियों का वैज्ञानिक अध्ययन है। संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि समूह विज्ञान समूह, गतिशीलता का विवेचन है।

समूह गति–विज्ञान और शिक्षा

(Group Dynamics and Education)

NOTES

अभी हमने कुछ पंक्तियों में समूह–गति विज्ञान तथा इससे संबधित अन्य क्षेत्रोंए सामाजिक अन्तःक्रिया और नेतृत्व का संक्षेप का वर्णन किया। समूह गति विज्ञान जैसा कि हम पहले भी कह चुके हैं, शिक्षा मनोविज्ञान के अध्ययन के एक नवीन क्षेत्र है। इस पर अभी कुछ बहुत अधिक अनुसंधान नहीं हुए हैं। किन्तु सन् 1950 ई. के बाद से जो भी अनुसंधान हुए उनसे हमें कक्षा अथवा विद्यालय समूह के गति–विज्ञान के बारे में अनेक महत्वपूर्ण जानकारियॉ प्राप्त हुई हैं। इन अनुसधांनो से प्राप्त हुई हैं। इन अनुसंधानों सें प्राप्त कुछ निष्कर्ष जो शिक्षा के क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं, निम्नलिखित हैं–

(1) किसी व्यक्ति की मनोवृत्ति पर उसके समूह का प्रभाव पड़ा है। यदि मनोवृत्ति में परिवर्तन करना है तो उसके समूह के गुणो में परिवर्तन लाकर किया जा सकता है।

(2) बालक का व्यक्तित्व उस समूह के वातावरण अथवा समूह–जीवन का कार्य पद्वति से प्रभावित होता है जिसका कि वह सदस्य है।

(3) समूह–व्यवहार बालक के मानसिक तनाव को कम कर देते हैं, किन्तु कभी–कभी इसके विपरीत भी होता है।

(4) छात्रों के आचरण और विश्वास प्रायः कक्षा के छोटे समूह मित्र–मण्डली खेल–समूह आदि के द्वारा नियंत्रित होते है। अतः शिक्षक को बालक के इन समूहों पर नजर रखनी चाहिए। यदि उनमें किसी भी प्रकार का दुराचरण दिखाई पड़े तो उस समूह में परिवर्तन अवश्य कर देना चाहिए।

(5) कभी–कभी छात्र में सीखने के प्रति अरूचि दिखलाई पड़ती है। उसका कारण परिवर्तन के प्रति रूकावट की भावना है। यदि छात्र को समझाकर इस योग्य बना दिया जाये कि वह स्वयं परिवर्तन चाहने लगे तो सीखना सम्भव हो जाता है।

(6) जब कोई सघन समूह (Cohesive Group) अपने लक्ष्य–प्रप्ति में निराशा का अनुभव करता है तो वह अधिक शक्ति के साथ लक्ष्य–प्रप्ति की ओर बढ़ता है। किन्तु बिखरे हुए समूह में दृढ संकलप का अभाव पाया जाता है।

NOTES

(7) कभी–कभी कक्षा–समूह विभिन्न गुटो (Cliques) में बॅट जाते हैं जो कि कक्षा कि एकता के लिए खतरानाक होता है। इस गुठबन्दी को रोकने के लिए शिक्षक को चाहिये कि वह कक्षा के समस्त छात्रो में एक दूसरे के प्रति आकर्षण उत्पन्न करे और सम्पूर्ण कक्षा को किसी समान उद्देश्य की पूर्ति की ओर गतिशील बनाये।

(8) बालक का सामाजिक विकास समूह में ही सम्भव होता हैं। अतः किसी भी सामाजिक कार्यो मे भाग लेने का प्रशिक्षण देते समय शिक्षक को चाहिए कि वह व्यक्तिगत रूप से नहीं, वरन सामूहिक रूप से प्रशिक्षित करने का प्रयास करे।

(9) श्री जैकिन्स (Jenkins) : के अनुसार अधिक सीखना, कक्षा में उस सीमा तक होता है जिस सीमा तक बालक की सामाजिक संवेगात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति न होने पर मानसिक तनाव उत्पन्न होता है और सीखने में बाधा पड़ती है। अतः शिक्षक को चाहिए कि वह छात्रों को इस प्रकार सहयोग पूर्वक रहने की शिक्षा और अवसर प्रदान करें कि उनमें से किसी भी प्रकार का तनाव न उत्पन्न हो। ?

10. शिक्षक का यह भी कर्त्तव्य है कि कक्षा के सम्बन्धों में किसी भी प्रकार का द्वन्द्व, हताशा, रूकावट ईर्ष्या आदि की भावनाओं को न उत्पन्न होने दे, तभी कक्षा में सीखना सम्भव हो सकता है।

सामाजिक स्तरीकरण Social Stratification:

सामाजिक स्तरीकरण वह सामाजिक व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत समाज के विभिन्न समूहों को क्रमशः उच्च से निम्न तक की स्थिति, पद तथा स्थान प्राप्त हो जाते हैं और उसी के अनुसार एक समूह विशेष को अन्य समूहों की तुलना में कुछ विशेष अधिकार प्राप्त हो जाते है। सामाजिक स्तरीकरण एक सार्वभौमिक तथ्य है। इसका कोई न कोई रूप सभी समाजों एवं कालों में पाया जाता है। मानव समाज के लम्बे इतिहास में सामाजिक असमानता का एक निश्चित निगम रहा है। कुछ विद्वान आदिम समाज के उदाहरणों द्वारा यह स्पष्ट करने का प्रयत्न करते हैं कि सामाजिक असमानता को एक नियम के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। किन्तु यह धारणा भ्रमपूर्ण है। आदिम समाजों में भी मुखिया की संप्रभुता, व्यक्तिगत शक्ति, पारिवारिक सम्पत्ति आदि के आधार पर ऊँच–नीच का भेद सदैव देखने को मिलता है। समाज में व्याप्त उच्चता व निम्नता की स्थिति को ही हम सामान्य शब्दों में सामाजिक स्तरीकरण कह सकते हैं।

सामाजिक स्तरीकरण सभी समाजों की एक अनिवार्य विशेषता है किन्तु इसके स्वरूप के विषय में सभी समाजों एवं कालों में असमानता दृष्टिगोचर होती है। भारत में जाति प्रथा के आधार पर स्तरीकरण पाया जाता है। तो कई पाश्चात्य देशों में वर्ग व्यवस्था एवं अर्जित गुणों को अधिक महत्व दिया जाता है। इस प्रकार जाति व्यवस्थ्ज्ञा और वर्ग व्यवस्था, सामाजिक स्तरीकरण की दो प्रमुख अभिव्यक्तियॉ है। सामाजिक स्तरीकरण वह व्यवस्था है जो समाज के समूहों और सदस्यों को विभिन्न स्तरों में विभक्त करके सामाजिक जीवन के व्यवस्थित करने का प्रयत्न करती है। स्तर निर्माण की इसी प्रक्रिया का नाम सामाजिक स्तरीकरण है।

NOTES

सामाजिक स्तरीकरण अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definitions of Social Stratificaiton) :

सामान्यतः सामाजिक स्तरीकरण से आशय समाज के सफल संचालन, कार्य–विभाजन हेतु समाज के लोगों को उनकी योग्यता, कार्य–वृत्ति, गुण, इत्यादि आधारों पर उच्च से निम्न की ओर श्रेणियों के विभाजन या वर्गीकरण से है। वस्तुतः स्तरीकरण समाज की एक आवश्यक प्रक्रिया है जो प्रत्येक समाज में परिलक्षित होती है।

कतिपय समाजशास्त्रियों ने सामाजिक स्तरीकरण की परिभाषा निम्नवत् दिया है–

फेयर चाइल्ड : ::सामाजिक स्तरीकरण सामाजिक तथ्व की विविध क्षैतिजीय धरातलों पर समूहों में एक व्यवस्था है तथा विभिन्न मात्रा में पायी जाने वाली उच्चता और निम्नता के रूप में संस्थिति की स्थापना है।''

"Social strutification is the arrangemnet of social element into grounds on defferent horizontal levels and the establishment of status on terms of varying superiority and inferiority."(Faircheild)

यंग और मैंक : ''बहुधा समाजों में लोग एक दूसरे को श्रेणीबद्ध करते है और इन श्रेणियों को उच्चता से निम्नता की ओर क्रमबद्ध करते है। इस प्रकार श्रेणियों को परिभाषित करने की प्रक्रिया सामाजिक स्तरीकरण कहलाती है और परिणामतः प्राप्त क्रमबद्ध श्रेणी को स्तरीकरण ढॉचा कहा जाता है।

" In most societies people classify one an other into categories, and rank these categories form higher to lower. The process of defining such

cateroreis is called "Social stratification" and the resulting set of ranked categories is called the stratification structure."

NOTES

सदर लैण्ड तथा वुडवर्ड : – स्तरीकरण केवल विभदीकरण की प्रक्रिया है जिसमें कुछ व्यक्तियों को दूसरे व्यक्तियो की तुलना में उच्च स्थिति प्राप्त होती है।

Stratificatuon is simply a process of interaction of diggerentiation where by some people come to..... rank higher than orthers."- Sutherland and Woodward'

रेमण्ड मुरे– " स्तरीकरण समाज का उच्च एवं निम्न सामाजिक इकाइयों मे किया गया क्षैतिजीय विभाजन है।" (Stratification is a horizontal division of society in to higher and lower social units.)-'Raymond W. Muray'

उपरोक्त परिभाषाओं के सूक्ष्म अनुशीलन सें सामाजिक स्तरीकरण की विशेषताएँ (Characteristics of social stratification) निन्नवत् परिलक्षित होती हैं–

(1) सामाजिक स्तरीकरण सामाजि़क समूहों का उच्च और निम्न स्तर पर क्षैतिजीय विभाजन है।

(2) सामाजिक स्तरीकरण में कुछ व्यक्तियो को दूसरे व्यक्तियो की तुलना में उच्च स्थिति प्राप्त होती हैं।

(3) सामाजिक स्तरीकरण श्रेष्इता और अधीनता (निम्नता) से आवद्व होता है।

(4) सामाजिक स्तरीकरण व्यक्ति–व्यक्ति में असमानता को प्रकट करता है इसमें कुछ को विशिष्ट अधिकार प्राप्त होते हैं तो कुछ में अभाव परिलक्षित होता है।

(5) सामाजिक स्तरीकरण सामाजिक ढॉचे का प्रतिबिम्ब होता है।

(6) सामाजिक स्तरीकरण जन्मजात् एवं अर्जित दोनों होता है।

(7) सामाजिक स्तरीकरण में स्थायित्व एवं नमनीयता दोनों गुण पाये जाते है।

(8) सामाजिक स्तरीकरण में प्रत्येक व्यक्ति को उसकी योग्यता और क्षमता के अनुरूप कार्य मिलता है जिसमें संघर्ष से मुक्ति मिलती है।

(9) सामाजिक स्तरीकरण से श्रम की प्रतिष्ठा स्थापित होती है।

(10) सामाजिक स्तरीकरण की धारणा श्रम विभाजन, विशेषीकरण तथा कार्य–कुशलता को महत्व देती है। इसमें मानव जीवन के प्रत्येक पहलू से सम्बन्धित आवश्यकताओं की पूर्ति स्वतः होती रहती है।

NOTES

सामाजिक स्तरीकरण के प्रमुख आधार (Main Basis of Social Stratification) :

सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत व्यक्ति को कौन सा स्तर दिया जाना चाहिए अथवा व्यक्ति की स्थिति किस प्रकार निर्धारित की जाए, इस सम्बन्ध में सभी समाजों में एकरूपता नहीं है। प्रत्येक समाज अपनी आवश्यकताओं, मूल्यों और परिस्थितियों के अनुसार एक या कुछ तत्वों को आधार मानकर सामाजिक स्तरीकरण की व्यवस्था को निश्चित रूप देता है। इनमें से कुछ प्रमुख आधारो को दो भागों में बॉटा जा सकता है।

1. प्राणिशास्त्रीय आधार (Bological Basis)
2. सामाजिक – सांस्कृतिक आधार (Socio-Cultural Basis)

प्राणिशास्त्रीय आधार (Bological Basis) :

समाज के विभिन्न व्यक्तियों तथा समूहों में पाये जाने वाली विभिन्नताओं का निर्धारण प्राणिशास्त्रीय आधार पर हो सकता है। प्रमुख प्राणिशास्त्रीय आधार, लिंग, आयु, प्रजाति, जन्म आदि माने जाते हैं।

(i) लिंग पर आधारित स्तरीकरण (Stratification Based on Sex): कुछ समाजों में लिंग भेद को सामाजिक स्तरीकरण का प्रमुख आधार माना जाता है। लिंग पर आधाारित स्तरीकरण संभवतः सबसे प्राचीन एवं सरल स्तरीकरण है। सभ्यता के आरम्भिक स्तर तक लिंग के आधार पर ही श्रम विभाजन और पदों का बॅटवारा किया जाता था। स्त्रियों और पुरूषों की सामाजिक स्थिति व कार्य क्षेत्र एक – दूसरे से बिल्कुल भिन्न थे और किसी को भी दूसरे के क्षेत्र में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं था। वास्तव में प्रत्येक समाज या संस्कृति स्त्री एवं पुरूष में ऊॅ–नीच का संस्तरण हो जाता हैं। समाज में किये जाने वाले बहुत सें कार्यो की प्रकृति ऐसी होती है कि स्त्रियॉ या तो उन्हें नहीं कर सकतीं या कुशलपूर्वक नहीं कर पाती। ऐसे कार्यो से सम्बधिन्त पद अधिकंशतः पुरूषों को प्राप्त होने की सम्भावना रहती है। कारण चाहे तो हो, लिंग पर आधारित स्तरीकरण किसी न रूप में आज तक विद्यमान है।

NOTES

(ii) आयु पर आधारित स्तरीकरण(Stratification based on age)– आयु के आधार पर स्थिति–भेद संसार के प्रत्येक समाज या संस्कृति में पाया जाता है। आयु का सम्बघ मानसिक परिपक्वता और अनुभव से होता है। अतः अधिक महत्वपूर्ण पदों पर व्यक्ति सकी एक निश्चित आयु का होना आवश्यक है। आयु के आधार पर स्तरीकरण सामान्यतः चार स्तर के माने जाते है– 1. बालक 2. किशोर 3. प्रौढ और 4. वृद्ध।

इनके अनुभव और उत्तरदायित्व एक–दूसरे से बिल्कुल भिन्न होते है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में तो आयु का महत्व इतना अधिक है कि परिवार, व्यवसाय और सम्पूर्ण समूह में उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य अधिकतर वयोवृद्ध व्यक्तियो को ही सौंप जाते हैं।

(iii) प्रजाति के आधार पर स्तरीकरण (Stratifocatopm based on the basis of Race)– प्रजाति के आधार पर स्तरीकरण उन समाजों में व्याप्त है जहॉ एक से अधिक प्रजाजि के लोग साथ–साथ रहते है। ऐसे समाजों मे प्रशासनिक पदो और उत्पादन के साधनों पर जिनका नियंत्रण होता है उस प्रजाति के सदस्यों को उच्च सामाजिक स्तर प्राप्त हो जाता है और अन्य प्रजातियों को कठिन परिश्रम के बाद भी निम्न स्तर प्राप्त होता है। अमेरिका तथा अफ्रीका में नीग्रो प्रजाति को एक विशेष जाति की सदस्यता के कारण ही सामाजिक स्तरीकरण में निम्न स्थान प्राप्त होता है।

(iv) जन्म के आधार पर स्तरीकरण (Stratification based on the basis of birth)– समाज में जन्म आधार पर ऊॅच–नीच का संस्तरण हमेशा विद्यमान रहता हैं। हमारे देश में प्राचीन समय मे जाति सामाजिक स्तरीकरण का प्रमुख आधार रही हैं। निम्न जाति का व्यक्ति कितना भी प्रतिभाशाली हो और साधन–सम्पन्न क्यों न हो उसको सामाजिक व्यवस्था में ऊॅचा स्थान नहीं मिला पाता है। आज भी भारतीय ग्रामीण समुदायों मे जाति के आधार पर ऊॅच–नीच का संस्तरण सामाजिक जीवन में विद्यमान है। यद्यपि अब जाति प्रथा के बंधन ढीले पड़ते जा रहें है। तथापि जाति का मनोवैज्ञानकि दबाव हमारी व्यवस्था को प्रभावित कर रहा है।

(v) बौद्धिक कुशलता (Intellectual ability)– वर्तमान समय में व्यक्ति की योग्यताए, कुशलता तथा क्षमता के आधार पर उसकी स्थिति का निर्धारण होता है। व्यक्ति के स्तर निर्धारण में आयु और लिंग का महत्व घटकर उसकी योग्यता का महत्व बढ़ रहा हैं। लोग बुद्धिमान, परिश्रमी, कार्यकुशल होते हैं, उनका स्तर अकुशल, आयोग्य, आलसी व्यक्तियों की तुलना में ऊँचा होता है।

NOTES

2. सामाजिक –सांस्कृतिक आधार

(Socio-cultrul Basis)

सामाजिक सांस्कृतिक आधारों पर भी प्रत्येक समाज में ऊँच–नीच का संस्तरण किसी न किसी रूप में अवश्य देखने को मिलता है। सामाजिक, सास्कृतिक आधारों मे प्रमुख आधार सम्पति, व्यवसाय ज्ञान, राजनीतिक शक्ति आदि हैं।

(i) सम्पति (Property)– सम्पति के आधार पर स्तरीकरण प्राचीनकाल से ही विद्यमान रहा है। पूँजीवादी समाजों में उन व्यक्तियों को उच्च सामाजिक स्तर प्राप्त होता है जिनका उत्पादन के साधनों पर सबसे अधिक अधिकार होता है और वह वर्ग जिसका पूँजी या उत्पादन के साधनों पर अधिकार नहीं होता उसे निम्न सामाजिक स्तर प्राप्त होता है। इतना ही नहीं सम्पति के घटने–बढ़ने के साथ–साथ भी व्यक्ति का सामाजिक स्तर ऊँचा–नीचा हो जाता है।

(ii) धार्मिक ज्ञान (Religious Knowledge)– कुछ समाज में उन व्यक्तियों को अधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होता है जिन्हें अपने समूह के धार्मिक विश्वासों का विशेष ज्ञान प्राप्त होता है। वर्तमान समय में स्तरीकरण के इस आधार का महत्व कम होता जा रहा हैं। उदाहरण के लिए ईसाई संगठन में पोप को सर्वोच्च स्थान होता है।

(iii) राजनीतिक शक्ति अथवा सत्ता (Political Power)– राजनीतिक सत्ता के आधार पर भी समाज में स्तरीकरण पाया जाता हैं। वैसे राजा–प्रजा शासक–शासित इत्यदि जिन लोगो के पास सैनिक शक्ति, सत्ता एवं शासन की बागडोर होती है उनकी स्थिति सत्ता एवं

NOTES

शाक्तिहीन लोगों से ऊँची होती हैं शासन–व्यवस्था के अन्तर्गत हमारे देश में राष्टपति की स्थिति सर्वोच्च हैं । उसके बाद क्रमशः उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, कैबिनेट स्तर के मंत्री, राज्य के मंत्री आदि का स्थान होता है।

(iv) व्यवसाय (Occupation)– व्यवसाय भी सामाजिक स्तरीकरण का प्रमुख आधार है। प्रत्येक समाज में कुद व्यवसाय सम्मानजनक और ऊँच माने जाते हैं और कुछ निम्न। जैसे डॉक्टर, इंजीनियर, प्रशासक, प्राध्यापक आदि का पेशा उच्च व सम्मानजनक माना जाता हैं तथा लकड़ी, लोहे आदि का काम, चमड़े का काम, दर्जी का काम, आदि पेशे को नीचा माना जाता हैं। इस आधार पर भी समाज में व्यक्तियों को ऊँची–नीची स्थिति प्राप्त होती है।

सामाजिक स्तरीकरण के निर्धारण में कार्ल मार्क्स (Karl Marks) ने केवल आर्थिक आधार को महत्वपूर्ण माना हैं सोरोकिन तथा वेबर (Sorokinand Weber) के अनुसार सामाजिक स्तरीकरण के तीन प्रमुख आधार हैं–

(1) आर्थिक आधर (Economic basis)

(2) राजनीतिक आधार (Political basis)

(3) व्यवसायिक आधार (Occupational basis)

पार्सन्स (Persons) ने व्यक्ति की स्थिति निर्धारण में निम्नलिखित आधारों को सम्मिलत किया है–

(1) नातेदारी समूह की सदस्यता (Membership of kinship group)

(2) व्यक्तिगत विशेषताएँ (Personal characteristics)

(3) अर्जित उपलब्धियॉ (Acquired achievements)

(4) सत्ता तथा शक्ति (Power)

(5) उपलब्धियॉ, इत्यादि। (Achievements, etc)

सामाजिक स्तरीकरण और शिक्षा (Social Stratification and Education) :

स्तरीकरण के विभिन्न आधारों में प्रमुख आधार आर्थिक आधार माने जाते हैं। सामान्य रूप से अधिक सम्पन्न लोगों के लिए शिक्षा का विशेष महत्व नहीं रहता कारण यह है कि इनकी आय के साधन निश्चित होते हैं। इन्हे अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष नहीं करना पड़ता। इन्हें आर्थिक – सामाजिक दृष्टि से सुविधा मिली होती है। इनके लिए शिक्षा, शोभा और अलंकार की वस्तु होती हे। इनके माता–पिता निश्चित होते है। शिक्षा के साधन इन्हें आसानी से प्राप्त हो जाते है। प्रायः यह वर्ग शैक्षिक गतिविधयों के प्रति उदासीन रहता है। आय के साधन अधिक होने ओर जीवन व्यस्त होने के कारण बालकों की ओर विशेष ध्यान नहीं दे पाते। इस वर्ग के अधिकांश बालकों का पालन पोषण नौकरों के द्वारा होता है। घर का वातावरण भौतिक आवश्यकताओं की दृष्टि से तो पूर्ण होता है लेकिन मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बालक सम्पूर्ण नहीं होते। अतः बालक तनाव की स्थिति में होते हैं। सम्पन्न परिवार के लोग उच्च स्तर की नौकरी पर निर्भर होते हैं। इनके आय के साधन निश्चित और आवश्यकता की दृष्टि से पर्याप्त होते हैं। इनके माता–पिता बालक की शिक्षा के लिए सचेष्ट होते हैं और उन्हें हर सम्भव शिक्षा प्रदान कर आगे बढाते है। कम सम्पन्न वर्ग की आमदनी के साधन सीमित होते हैं। वे किसी छोटी नौकरी या व्यवसाय में लगे होते हैं। इनमें शिक्षा के प्रति जागृति होती है। किन्तु आर्थिक कठिनाई के कारण शिक्षा प्राप्त करने में असमर्थ होते है। विपन्न वर्ग में समान्यतया शैक्षिक चेतना का अभाव रहता है। इनके आय के साधन अत्यन्त सीमित होने के कारण, शिक्षा इनके लिए बोझ के समान होती है।

NOTES

शिक्षा का सामाजिक स्तरीकरण पर प्रभाव :

1. शिक्षा समाज में व्याप्त संकीर्ण स्तरीकरण को नष्ट करती है। वर्ग भेद को मिटाती है। शिक्षा जन्म पर आधारित स्तरीकरण, जातिग्रस्त स्तरीकरण और प्रजाति स्तरीकरण को मिटाती है।

2. शिक्षा व्यक्ति में यह भावना उत्पन्न करती है कि वह अपनी कार्य कुशलता के आधार पर समाज में प्रस्थिति प्राप्त कर सकता है एक प्रकार से शिक्षा उर्ध्वगामी गतिशीलता में वृद्धि करती है।

3. शिक्षा सामाजिक गतिशीलता के अवसर प्रदान करती है। शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति ऊँचे पद प्राप्त करता है। व्यक्ति जिस प्रकार की शिक्षा प्राप्त करता है। उसी के अनुरूप उसे पद प्राप्त होता है। जो व्यक्ति शिक्षा के अपेक्षित स्तर को प्राप्त नहीं कर पाता वह उच्च स्तर को प्राप्त करने में असमर्थ रहता है। अतः इससे स्पष्ट है

NOTES

कि शिक्षा सामाजिक व्यवस्था में उच्च पद दिलाने तथा समाज में उच्च स्तर को प्राप्त करने में असमर्थ रहता है। अतः इससे स्पष्ट है कि शिक्षा सामाजिक व्यवस्था में उच्च पद दिलाने तथा. समाज में उच्च स्तर दिलाने का महत्वपूर्ण कारक है।

4. शिक्षा समाज में श्रम विभाजन और विशेषीकरण की वृद्धि करती है। शिक्षा के आधार पर ही व्यक्ति अलग–अलग क्षेत्रों में विशेष योग्यता प्राप्त कर समाज में उच्च प्रस्थिति प्राप्त कर लेते हैं।

5. शिक्षा व्यक्ति को यह ज्ञान कराती है कि स्तरीकरण का अर्थ सदैव शोषण कराना नहीं होता जैसा कि जातिगत व्यवस्था में होता है। वास्तव में स्तरीकरण से व्यक्तियों में प्रतियोगिमा की भावना का विकास होता है और उच्च पद प्राप्त करने की प्रेरणा प्राप्त होती है। जिस समाज में उच्च और निम्न पद नहीं होतें, वहॉ लोगों को विकास के कम अवसर प्राप्त होते हैं।

6. शिक्षा द्वारा व्यक्ति अपनी सामाजिक स्थिति को ऊॅचा डठा सकता है और समाज में उच्च स्थिति प्राप्त कर सकता है। शिक्षा द्वारा विभिन्न पदों का उचित निर्धारण होता है और व्यक्तियों को उनकी योग्यता के अनुरूप पद प्राप्त होते हैं।

7. शिक्षा द्वारा ही व्यक्ति के सामाजिक सतरीकरण के कारण उत्पन्न हुए विभिन्न वर्गो के बीच संघर्ष की स्थिति को कम किया जाता है। समाज में उच्च एवं निम्न पद होने के कारण व्यक्तियों में वर्ग संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होने की सम्भावना होती है। ऐसी स्थिति में शिक्षा ही समाज को संघर्ष से बचाने में सहायक होती है।

8. शिक्षा ही सामाजिक पदों के लिए योग्यताएं उत्पन्न करती है। शिक्षा ही यह भावना उत्पन्न करती है कि व्यक्ति एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा न करके अपना स्थान समाज में ऊॅचा बनाने के लिए अपनी योग्यता में वृद्धि करे।

9. शिक्षा ही व्यक्ति की मनोवृत्ति में परिवर्तन लाती है।, उन्हें विकास के प्रति जागरूक बनाती है। जिससे व्यक्तियों में विभिन्न पदों को प्रापत करने की प्रेरणा उत्पन्न होती है।

10. शिक्षा ही विभिन्न पदों से सम्बन्धित योग्यता और कुशलता उत्पन्न करने में सहायक है।

शिक्षा ही व्यक्ति में यह भावना उत्पन्न करती है कि वह जाति के आधार पर, समाज में अपनी स्थिति को नीचा न समझे बल्कि अपनी योग्यता और कुशलता में वृद्धि कर उच्च पद प्राप्त करें। शिखा का ही प्रभाव है कि आज समाज में व्यक्ति को उच्च पद केवल जन्म या किसी जाति विशेष में जन्म लेने के कारण नहीं प्राप्त होते। एक निम्न जाति का व्यक्ति भी शिक्षा द्वारा उच्च पद प्राप्त कर, अपनी सामाजिक स्थिति ऊँची कर लेता है। प्राचीनकाल में समाज में शिक्षा का प्रसार कम था अतः व्यक्ति को उच्च प्रस्थिति किसी जाति विशेष में जन्म लेने के कारण प्राप्त हो जाती थी। जैसे– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र आदि। किन्तु वर्तमान समय में व्यक्ति कुशलता व योग्यता के आधार पर समाज में उच्च पद प्राप्त करने में समर्थ है। यही कारण है कि आज स्तरीकरण के प्रारम्भिक मापदण्ड में आयु, लिंग का प्रभाव कम है और बौद्धिक कुशलता का प्रभाव अधिक है।

NOTES

वर्तमान भारतीय समाज में स्तरीकरण का स्वरूप :

वर्तमान सदी अनेक परिवर्तनों की धुरी है। जनतान्त्रिक दृष्टिकोण, औद्योगीकरण, नगरीकरण, तथा पिश्चमीकरण की प्रक्रिया से वर्तमान भारतीय समाज में स्तरीकरण के स्वरूप में काफी बदलाव आता जा रहा है। प्राचीन भारतीय स्तरीकरण और उसमें व्याप्त विभेदकता समाप्त होती जा रही है। प्राचीन स्तरीकरण में जहॉ उच्च जातियों का निम्न जातियो पर प्रभुत्व रहता था और निम्न जातियॉ अपने को उच्च जातियों का निम्न जातियों पर प्रभुत्व रहता था और निम्न जातियॉ अपने को उच्च जातियों के अधीन मानती थी वहीं अब निम्न जातियू अपने को उच्च जातियों के प्रभुत्व से पृथक मानते हुए प्रतिकार की ओर उन्मुख हो रही है। वे अब अपने को निम्न जातियॉ का कहने पर चिढ़ती है। वस्तुतः वर्तमान में निम्न जातियॉ भी उच्च जातियों के समान सभी रीति–रिवाजों, मान्यताओं, कर्मकाण्डों को अपना लिया हैं इसलिए वे कहतें है कि जब हम समतुल्य हो गये हैं तो उच्च तथा निम्म जाति के रूप में अंतर करना प्रासंगिक नहीं रहा गया है।

प्राचीन स्तरीकरण में व्यक्ति की जन्त के आधार पर जातिगत सदस्यता का निर्धारण होता था और उच्च जाति में जन्म लेने सें व्यक्ति अपने आप उच्च सामाजिक स्थिति को प्राप्त कर लेता था। लेकिन वर्तमान में जन्म के स्थान पर सम्पति को प्रमुखता दिये जाने के कारण आज व्यक्ति की स्थिति आर्थिक सम्पन्नता के द्वारा निश्चित होने लगी है। जिससे धनी शूद्र, निर्धन ब्राहाम्ण की अपेक्षा उच्च स्थान समाज में प्राप्त कर लेता है।

NOTES

वर्तमान स्तरीकरण में निम्न जातियों की स्थिति ऊपर उठ रही है क्योंकि उन्हें सरकार की ओर सें विशेष अधिकार एवं सहूलियतें प्रदान की जा रही हैं। उनके साथ भेद–भाव पूर्ण व्यवहार करना कानून द्वारा वर्जित कर दिया गया है। वही धर्म एवं राजतंत्र की समाप्ति के कारण ब्राहम्ण एवं क्षत्रिय वर्ग की प्रतिष्ठा में क्षीणता आती जा रही हैं इस प्रकार प्रत्येक स्तर की इकाइयों की स्थिति में स्पष्ट रूप से परिवर्तन हो रहा है।

वर्तमान मे औद्योगीकरण, प्रौद्योगीकरण तथा आधुनिकीकरण तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण के कारण स्वतंत्रता, समानता, भातृत्व आदि के विकास को प्रमुखता दिया जा रहा है। जिससे सामाजिक स्तरीकरण में अब जन्म, आयु, लिंग, प्रजाति को महत्व न देकर उसकी कार्य–कूशलता, प्रशिक्षण, अनुभव, व्यवहार, साहस को महत्व दिया जा रहा हैं।

जनतांत्रिक समाज के निर्माण में कुशल नागरिकों की महती भूमिका होती है। इसके लिए समानता एवं धर्मनिरपेक्षता को महत्व दिया जा रहा हैं शिक्षा एवं किसी भी संस्था में धर्म को प्रमुखता नहीं दिया जा रहा हैं। अतएव वर्तमान में सामाजिक स्तरीकरण के आधारों में 'धर्म' महत्वहीन हो गया है। वर्तमान समाज वर्णगत और जातिगत स्तरीकरण को छोड़कर वर्गगत एवं व्यवसायगत स्तरीकरण की ओर उन्मुख हो रहा है।

सामाजिक परिवर्तन अर्थ एवं परिभाषा :

इक्कीसवीं सदी महान परिवर्तनों की धुरी है। इस परिवर्तन का सबसे बड़ा पक्ष यह है कि सृजनात्मक एवं वैज्ञानिक आविष्कारों के परिणामस्वरूप अनेक नवाचार (Innovations) उदित हो रहे है। इन नवाचारों द्वारा व्यक्ति अपने चिन्तन, चेतन, कौशल, व्यवहार तथा क्रिया कलापों में बदलाव लाकर के उज्जवल भविष्य की सुनिश्चित सम्भावनाओं को साकार करने के लिए सतत् प्रयत्नशील है। नवाचारों के अभ्युदय से व्यक्ति की जीवन प्रक्रिया तथा चिन्तन की धारायें बदती है। जिसके परिणाम स्वरूप सामाजिक मूल्यों, मान्यताओं, आस्थाओं, प्रथाओं, मनोवृत्तियों, रूचियों तथा व्यक्ति के जीवन शैली में व्यापक बदलाव आया है। इस प्रकार वर्तमान समय में समाज में परम्परागत मान्यताओं, प्राथओं क्रियाविधियों में जो बदलाव या नवीनता परिलक्षित हो रही है वह सामाजिक परिवर्तन का द्योतक है। शिक्षा को समाजिक परिवर्तन की अधिष्ठात्री माना जाता है। शिक्षा स्वयं भी सामाजिक परिवर्तन से परिवर्तित हो जाया करती है। क्योंकि बिना परिवर्तन के शिक्षा लोगों को परिवर्तित सामाजिक जीवन में व्यक्त्यिों को समसामयिक जीवनादर्शो एवं गतिविधियों से परिचित कराने में अक्षम हो जाती है। सामाजिक परिवर्तन से शिक्षा समय–सापेक्ष बनती है, उसमें आधुनिक प्रवृत्तियों (Modern

Trends) का संचार होता है तभी वह समाज एवं व्यक्ति को परिवर्तनों का दिशा बोध कराके कार्य नियोजक परस्थितियॉ प्रदान करती है। अतः शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन में घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्रस्तुत अध्याय में शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन के आपसकी सम्बन्ध के विविध पहलुओं का अध्ययन किया गया है।

NOTES

साधारण अर्थों में सामाजिक परिवर्तन से आशय सामाजिक जीवन शैली और समाज की संरचना में होने वाले बदलाव से है। लेकिन विभिन्न समाजशास्त्रीयों ने सामाजिक परिवर्तन के अर्थ को अलग–अलग सन्दर्भो से सम्बन्धित किया है।

एच0 एम0 जानसन ने अपनी पुस्तक – ''सोशियोलॉजी – ए – सिस्टेमेटिक इण्ट्रोड्रक्शन'' ''समाज के दो पक्ष होते हैं। प्रथमतः समाज का संरचनात्मक पक्ष, द्वितीयतः समाज का कार्यात्मक पक्ष सामाजिक परिवर्तन से आशय समाज के संरचनात्मक पक्ष में हए बदलाव से हैं।''

जोन्स ने अपनी पुस्तक ''बेसिक सोशियोलॉजिकल प्रिंसिपल्स'' में सामाजिक परिवर्तन को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि– ''सामाजिक परिवर्तन वह शब्द है जो सामाजिक प्रक्रियाओं, सामाजिक प्रतिमानो, सामाजिक अन्तःक्रिया अथवा सामाजिक संगठन के किसी भी कारक में संशोधन या बदलाव को प्रकट करने के लिए किया जाता है।''

किंग्सले डेविस ने अपनी पुस्तक – ''ह्यूमन सोसाइटी'' में लिखा है कि– ''सामाजिक परिवर्तन से आशय मुख्यतः उन संशोधनों से है जो सामाजिक संरचना या ढॉचे में हुआ करते हैं।

मैकाइवर एवं पेज ने अपनी पुस्तक 'सोसाइटी' में लिखा है कि ''समाजशास्त्री होने के नाते हमारी विशेष रूचि प्रत्यक्ष रूप से सामाजिक सम्बन्धों मे है। केवल इन सामाजिक सम्बन्धों में होने वाले परिवर्तन को ही हम सामाजिक परिवर्तन कहते हैं।''

बॉटमोर ने अपनी पुस्तक ''सोसियोलॉजी'' में लिखा है कि– सामाजिक परिवर्तन के अन्तर्गत वे परिवर्तन शामिल होते है जो सामाजिक संरचना, सामाजिक संस्थाओं, अथवा उनके पारस्परिक सम्बन्धों में घटित होते हैं''

अतः स्पष्ट है कि सामाजिक परिवर्तन वह बदलाव है जो मानवीय सम्बन्धों, व्यवहारों, संस्थाओं, कार्यविधियों, सामाजिक संरचना, मूल्यों एवं मानव जीवन शैली में होते हैं।

सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएं (Characteristics of Social Change) :

NOTES

सामाजिक परिवर्तन का सम्बन्ध मानव जीवन तथा समाज की संरचना, व्यवस्था सामाजिक सम्बन्धों आदि से होता है। विविध समाजशास्त्रीयों के मतों के आलोक में सामाजिक परिवर्तन की विशेषताओं को निम्न रूप से व्यक्त किया जा सकता है–

1. सामाजिक परिवर्तन सार्वभौमिक एवं सर्वव्यापी रूप से प्रत्येक समाज में पाया जाता है। यह समय के साथ–साथ चलता है।
2. सामाजिक परिवर्तन एक प्राकृतिक घटना है। यह एक शाश्रवत एवं अवश्यंभावी घटना है। वस्तुतः प्रकृति बदलती है तो मनुष्य बदलता है जिससे सामाजिक परिवर्तन आता है।
3. सामाजिक परिवर्तन प्रत्येक समाज में समान रूप सें नहीं किया जाता हैं इसका स्तर कभी ऊँचा होता है तो कभी नीचा होता है। आदिवासी समाज में इसका स्तर प्रायः कम होता हैं
4. सामाजिक परिवर्तन के स्वरूप स्थिति आदि के बारे में पूर्वानुमान एवं भविष्यवाणी नहीं की जा सकती है।
5. सामाजिक परिवर्तन का सम्बंध वैज्ञानिक जागरूकता से होता हैं।
6. सामाजिक परिवर्तन एक जटिल प्रकिया हैं इसका विकास होनें मे समय लगता है।
7. सामाजिक परिवर्तन के पीछे कुछ न कुद कारण अवश्य पाये जाते है। जैसे–सामाजिक, शैक्षिक, भौगोलिक, जैविक, सांस्ककृतिक कारण आदि।
8. सामजिक परिवर्तन समाज के प्रत्येक समुदाय को प्रभावित करता है।
9. सामाजिक परिवर्तन स्थायी न होकर निरन्तर गतिशील होता है।
10. सामाजिक परिवर्तन का स्वरूप इतना पेंचिदा होता है कि समाज में बहुत से दिखाई ही नहीं पड़ते, न उनका आभास ही होता है।

सामाजिक परिवर्तन के कारक या कारण

(Factors of social change)

NOTES

गिलिन एवं गिलिन (Gillin and Gillin) ने अपनी पुस्तक–"कल्चरल सोसियोलॉजी" (Cultural Sociology) में लिखा हैं कि– सामाजिक परिवर्तन जीवन की स्वीकृत विधियों में होने वाले बदलाव को कहते है। यह बदलाव भौगोलिक दशाओं के परिणाम स्वरूप या सांस्कृतिक साधनों, जनसंख्या की रचना या विचारधारा अथवा समूह के भीतर हुए अविष्कारों के फलस्वरूप होते हैं।

अतः स्पष्ट है कि सामाजिक परिवर्तन के निम्नलिखित कारक या कारण है–

1. भौगोलिक कारक (Geographical Factors)
2. जैविक कारक (Biologiacal Factors)
3. सांस्कृतिक कारक (Cultural Factors)
4. मनोवैज्ञानिक कारक (Psychologiacal Factors)
5. प्रौद्योगिक कारक (Technological Factors)
6. शैक्षिक कारक (Educational)

भौगोलिक कारक के अन्तर्गत भूकम्प, बाढ, जलवायु, प्राकृतिक स्थिति सामाजिक परिवर्तन लाते हैं। जैविक कारक के अन्तर्गत अनुवाशिकता, जन्म, मूलवंश एवं विकास की दशाएँ सांस्कृतिक कारक में प्रथाएँ, विश्वास, आचरण की शैली, कला कौशल, भाषा–सहित्य, ज्ञान–विज्ञान आदि आते है। मनौवैज्ञानिक कारक के अन्तर्गत मूल प्रवृत्तियों में परिवर्तन, रूचियों मे परिवर्तन, अभिप्रेरण में परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन को अंजाम देते है। प्रौद्योगिकी कारक में विज्ञान का प्रसार, आविष्कार, यत्र, उद्योग, व्यवसाय, नगरीकरण आदि तथा शैक्षिक कारक के अन्तर्गत साक्षरता का प्रसार, उत्तम शिक्षा की व्यवस्था, कम्यूटर, इण्टरनेट, विशिष्ट शिक्षा केन्द्र, मुक्त विद्यालय एवं विश्वविद्यालय आदि कारक सामाजिक परिवर्तन को मूर्त रूप देने का कार्य करते है।

(Social Change and Cultural Change)

NOTES

बहुधा बहुत से विचारक सामाजिक परिवर्तन और सांस्कृतिक परिवर्तन को समान अर्थ में स्वीकार करते हैं। किन्तु इन दोनों में वही अन्तर है जो समाज और संस्कृति में है। प्रायः सामाजिक परिवर्तन सें आशय समाज की संरचना एवं सगठन में हुए बदलाव सें लगाया जाता है, जबकि सांस्कृतिक परिवर्तन सें आशय सांस्कृतिक विरासत–रहन–सहन, खान–पान, विवाह, वेशभूषा, साहित्य, आदर्श, विश्वास आदि में हुए बदलाव को इंगित करता है। उदाहरणार्थ– प्राचीन समय में दलित एवं अछुत व्यक्तियों का घर में प्रंवेश, जातियों को मिल–जुलकर कार्य एवं व्यवहार करने की छुट हैं अब सभी जाति के लोग मंदिरों में प्रवेश कर धार्मिक उत्सवों में सहभागिता कर रहे हैं। इस प्रकार का सामाजिक सम्बन्ध सामाजिक परिवर्तन का द्योतक हैं। दूसरे उदाहरण में यदि सभी दलित एवं अछुत व्यक्ति सामूहिक भोज में सभी व्यक्तियों के साथ भोजन करें, सभी जातियों में व्याप्त असमानता को दूर कर रिश्तेदारियॉ, नातेदारियॉ कायम की जायॅ तो यह सांस्कृतिक परिवर्तन कहा जायेगा।

शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन में सम्बन्ध

(Relationship between education and social change)

शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन एक दूसरे के पूरक है। शिक्षा से सामाजिक परिवर्तन की पृष्ठभूमि निर्मित होती हैं तो सामाजिक परिवर्तन के अनुरूप बदलते सामाजिक आकांक्षा, आवश्यकता को दृष्टिगत रखकर शिक्षा भी परिवर्तित हो जाती है। शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन के आपसी सम्बन्ध को दो रूपों में समझा जा सकता है–

(A) शिक्षा सामाजिक परिवर्तन के अभिकरण के रूप में (Education As an Agent social change)

(B) सामाजिक परिवर्तन के अनुगमिनी के रूप में शिक्षा (Edication follows social change)

(A) शिक्षा सामाजिक परिवर्तन के अभिरकरण के रूप में

सामाजिक परिवर्तन को अंजाम देने में शिक्षा एक अभिकरण या साधन के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। समाज कें प्रत्येक व्यक्ति अपनी सभ्यता एवं सस्कृति के

मूलभूत सिद्धांतों, कारकों, मान्यताओं, मूल्यों, परम्पराओं का ज्ञान शिक्षा के द्वारा ही प्राप्त करता है। इसी कारण समाज के प्रबुद्ध वर्ग के लोगों के द्वारा विद्यालय रूपी औपचारिक संस्थाओं की स्थापना की जाती हैं। इन विद्यालयों में प्रवेश लेने वाले विद्यार्थी अपनी संस्कृति के शाश्वत मूल्यो, आदर्शो, कारणीय–आकरणीय कर्तव्यों, विश्वास की जानकारी अर्जित करके उन पर चिन्तन–मनन, तर्क–विर्तक करते है। परिणामतः नवीन दृष्टिकोण का विकास करके समाज को कुछ नवीन मंतब्य प्रदान करते हैं। व्यक्तियों द्वारा प्रदत नवीन दृष्टिकोण, मान्यता, शोध, अन्वेषण, आविष्कार की उपयोगिता को दृष्टि में रखकर समाज के अन्य व्यक्तियों द्वारा जब वह आत्मसात कर लिया जाता है तो वह सामाजिक परिवर्तन का द्योतक होता हैं। सामाजिक परिवर्तन लाने मे शिक्षित व्यक्ति की भूमिका महत्वपूर्ण होता हैं। डॉ0 जी0 एस0 भटनागर ने अपने शोध अध्ययन (1972) शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन में इसी दृष्टिकोण का समर्थन करते हुए उद्घटित किया है कि शिक्षित व्यक्तियो में अशिक्षित व्यक्तियों की तुलना में अधिक आधुनिक प्रंवृतियॉ एवं दृष्टिकोण होता हैं। इसक कारण सम्भवतः यह है कि आशिक्षित व्यक्ति समाज मे परिवर्तन लाने हेतु न चिन्तन मनन करते है और न ही उसमें ऐसा करने हिम्मत होती हैं। दूसरे आशिक्षित व्यक्ति नवीन प्रवृत्तियों की समुचित व्याख्या तथा दूसरों को अपनाने हेतु अभिप्रेरणा भी नहीं दे पाते हैं अतः स्पष्ट है कि शिक्षा एक अभिकरण्पा के रूप में सामाजिक परिवर्तन हेतु आधार प्रदान करती है। "शिक्षा की चुनौती : नीति सम्बन्धी परिपेक्ष्य" नामक दस्तावेज (1985) में सामाजिक परिवर्तन कें सदर्भ में शिक्षा की भूमिका को स्पष्ट करते हुए कहा गया हैं कि– मानव इतिहास में शिक्षा मानव समाज के विकास के लिए एक सतत किया और आधार रही हैं। मनोवृत्तियों, मूल्यो तथा ज्ञान और कौशल दोनो ही क्षमताओं के विकास के माध्यम सें शिक्षा लोगों को बदलती परिस्थितियों के अनुरूप बनानें के लिए उन्हें शक्ति एवं नमनीयता प्रदान करती है, सामाजिक विकास के लिए प्रेरित करती है तथा उन्हें योगदान देने योग्य बनाती हैं।"

प्रत्येक समाज की कुछ मूलभूत मान्यताएॅ होती हैं। भाषा, प्रथा, परम्परा रीति रिवाज, धर्म, कला, साहित्य, सगीत एवं अन्य सामाजिक कारको को सामाजिक विरासत कहा जाता हैं समाज में निहित विरासत में सुधार परिमार्जन परिशोधन हेतु योग्यता एवं कुशलता का विकास करके शिक्षा सामाजिक परिवर्तन लाने हेतु दिशा बोध कराती हैं। सामाजिक विरासत को एक पीढ़ी सें दूसरी पीढ़ी तक पहुॅचाती हैं जिससे समाज के नागरिकों को परम्परागत मूल्यो की जानकारी होती हैं। कालान्तर में वे परम्परागत समाज के परम्परागत मूल्यो के गुण दोष

NOTES

विवेचन के आधार पर उसमें नवीन मूल्यों का समायोजन कर समाज यको आधुनातन बनाते है। यह सब कार्य सामाजिक परिवर्तन में शिक्षा के योगदान का बोध कराता है।

NOTES

(B) सामाजिक परिवर्तन के अनुगामिनी के रूप में शिक्षा

जिस प्रकार शिक्षा सामाजिक परिवर्तन लाने में एक अभिकरण की भूमिका

निभाती है, उसी प्रकार वह सामाजिक परिवर्तन का अनुगमन (Follows) भी करती है। यदि शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का अनुगमन न करे तो वह समसामयिक जीवनदर्शो, वाछितों उद्देदश्यो के अनुरूप व्यक्ति के व्यक्तित्व का बहुमुखी विकास ही कर पावे। अतः जैसे–जैसे सामाजिक परिवर्तन होता जाता है, वैसे–वैसे शिक्षा भी अपने को परिमार्जित बनाती जाती है। ओटावे महोदय का दृष्टिकोण है कि– प्रायः यह कहा जाता है कि शिक्षा सामजिक परिवर्तन का एक कारक है। जबकि इसके विपरीत अधिक सत्य है कि शैक्षिक परिवर्तन, सामाजिक परिवर्तन करने के बजाय उसका अनुगमन करता है। वास्तव में यदि देखा जाय तो स्पष्ट होता है कि शिक्षा की सम्पूर्ण व्यवस्था समाज के द्वारा ही की जाती है। जैसा समाज होता है, वेसी ही उसकी शासन प्रणाली होती हैं उसी के अनुरूप शिक्षा के उद्देदश्य, पाठयचर्या, शिक्षण–विधि, अनुशासन, शिक्षक –शिक्षार्थी का स्वरूप निर्धारित होता हैं। भारतीय इतिहास के अनुशीलन सें यह स्पष्ट होता हैं कि प्राचीन भारतीय समाज धर्म एवं आध्यात्म सें अनुप्राणित था। तत्कालीन शिक्षा में इसी कारण सम्पूर्ण व्यवस्था में धर्म एवं आध्यतम सें अनुप्राणित था। तत्कालीन शिक्षा में इसी कारण सम्पूर्ण व्यवस्था में धर्म एवं आध्यात्म का बोलबाला था। किन्तु कालान्तर में जब सामाजिक परिवर्तन के अनुरूप भौतिकवाद एवं अर्थ–प्रधान दृष्टिकोण के अनुरूप समाज का ताना–बाना नियोजित किया गया तो शिक्षा भी भौतिकवाद एवं अर्थ–प्रधान दृष्टिकोण को अंगीकार कर लिया। यह सामाजिक परिवर्तन का ही प्रतिफल हैं कि शिक्षा में सूचना एंव संचार तकनीकी को प्रश्रय दिया जा रहा हैं। भूमण्डलीकरण एवं उदारीकरण के अनुरूप व शिक्षा का नियोजन किया जा रहा है। स्ववितपोषी संस्थाएँ अस्तित्व में आ रही है। विदेशी संस्थाएँ भारत में अपनी संस्थाएँ स्थापित कर रही है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण को शिक्षा में स्थानापन्न किया जा रहा हैं। समय–समय अनेकों समितियों का गठन करके परिवर्तित सामाजिक मान्यताओं का अध्ययन कर शिक्षा में परिवर्तन लाने हेतु शैक्षिक नीति–नियतां प्रयासरत हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, राममूर्ति समिति, ज्ञान समिति (2005) इस दिशा में शिक्षा का पथ–प्रदर्शन कर रहे हैं। वर्तमान में ज्ञान आधारित समाज के सृजन हेतु शिक्षा में आमूल–चूल परिवर्तन हेतु प्रयास किया जा रहा है। यह सब शिक्षा द्वारा सामाजिक परिवर्तन के अनुगमन का द्योतक है।

नगरीकरण आधुनिकीकरण, पश्चिमीकरण तथा शिक्षा (Urbanization, Modrnisation and Education) :

NOTES

नगरीकरण और आधुनीकीकरण वर्तमान सामाजिक जीवन शैली के दो प्रमुख अवयव है। वस्तुतः सामाजिक जीवन में व्यक्ति पृथक–पृथक समूहों में गॉव व नगरों में बसे हुए होते हैं। गॉव में व्यक्ति को प्रकृतिक परिवेश मिलता है। वहॉ कृतिमता, यांत्रिकता कम होती है। सुख सुविधाओं के नाम न्यूनधिक सुविधाएं उपलब्ध होती है। वहीं नगर का स्वरूप व्यापक होता है। नगर कल कारखानों, से युक्त, भौतिक सुविधाओं से युक्त तथा कृतिमता एवं यांत्रिकता से परिपूरित होता है। यहॉ हर एक व्यक्ति को कुछ न कुछ काम मिलने की सम्भावनाऐं होती है। इसलिए जब नवीन जीवन यापन तथा काम की उपलब्ता के कारण नगरों को ज्यादा महत्व देते हुए ग्रामीण व्यक्तियों द्वारा नगरों की ओर पलायन किया जाता है। तो उसे नगरीकरण या शहरीकरण कहा जाता है। नगर में रहते हुए व्यक्ति आधुनिक सुख सुविधाओं का सदुपयोग करता है। अत्यधिक शिक्षित बनता है। विविध योजनाओं के विषय में जानकारी रखता है, कुछ व्यवसायों में दक्षता हासिल करता है, जिससे कुशल मानव संसाधन या जनशक्ति का निर्माण होता है। इससे आर्थिक विकास तथा प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि होती है। परिणमतः व्यक्ति पहले से चली आ रही व्यवस्था, संरचना, संस्कृति, उद्योग, जीवनशैली का आधुनिक या वर्तमान परिप्रेक्ष्य में स्वरूप परिवर्तित कर देता है। व्यक्ति द्वारा समय के साथ–साथ अपने सम्पूर्ण जीवन शैली में लाये गये बदलाव को ही आधुनकीकरण के नाम से सम्बोधित किया जाता है। सारांशतः नगरीकरण नगरों की ओर पलायन कर व्यवस्थित होना है तो आधुनकीकरण समय सापेक्ष रहन–सहन खान–पान एवं मानव जीवन शैली में किया गया बदलाव है। नगरीकरण एवं आधुनिकीकरण का सम्बन्ध मुख्यतः समजा व्यक्ति और संस्कृति से आच्छादित होता है। नगरीकरण वाह्यपक्ष को दिग्दर्शित करता है तो आधुनिकीकरण आन्तरिक पक्ष से सम्बन्धित होता है किन्तु नगरीकरण तथा आधुनिकीकरण मानव जीवन शैली के दो पहलू है। प्रस्तुत अध्याय में नगरीकरण आधुनिकीकरण के स्वरूप, अर्थ, परिभाषा तथा शिक्षा से सम्बन्ध पर व्यापक चर्चा की गयी है।

नगरीकरण : अर्थ एवं परिभाषा :

नगरीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें नगरों की जनसंख्या में वृद्धि होती है। यह गॉवों को कस्बों में और कस्बों को नगरों में परिवर्तित होते जाने की प्रक्रिया भी है। नगरीकरण, जनसंख्या के नगर की ओर केन्द्रि होने की प्रक्रिया को भी कहते हैं समाजशास्त्रियों के अनुसार

NOTES

नगरीकरण जीवन जीने की एक विधि है, जिसका प्रसार नगरों से गॉवों की ओर होता है। यह जीवन विधि नगरों तक ही सीमित नहीं होती बल्कि गॉव में रहकर भी लोग नगरीय जीवन विधि को अपना सकते हैं। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि नगरीकरण एक विशिष्ट संस्कृति का भी सूचक होता है जहाँ नगरीय मूल्य एवं जीवन पद्धतियों में रहने वाली जनसंख्या की वृद्धि होती है। नगरीकरण को विभिन्न विद्वानों ने निम्नलिखित रूपों में परिभाषित किया है–

- ई० ई० बर्गेल (E.E. Burgale) के अनुसार : "ग्रामीण क्षेत्रों को नगरीय क्षेत्रो में बदल देने की प्रक्रिया नगरीकरण है।"
- किंग्सले डेविस (Kingsley Davis) के अनुसार : "नगरीकरण एक निश्चित प्रक्रिया है, परिवर्तन का वह चक्र है, जिसमें कोई समाज कृषक से औद्योगिक समाज में परिवर्तित होता है।"
- डब्ल्यू० एस० थॉमसन (W.S Thomson) के अनुसार : "पूर्ण रूप से कृषि कार्यो में संलग्न व्यक्तियों का शमन जब शासन, उत्पादन, व्यवसाय तथा सम्बन्धि स्वार्थो की ओर होता है तो वह नगरीकरण कहलाता है।"
- एच० पी० फेयरचाइल्ड (H.P. Fairchild) के अनुसार : "नगरीकरण का अर्थ नगरीय बनने की प्रक्रिया से है। अर्थात् व्यक्तियों का नगरीय क्षेत्रों को गमन तथा नगरीय प्रक्रियाओं, जनसंख्या तथा क्षेत्रों की वृद्धि।"
- ब्रीज (Brees) के अनुसार : "नगरीकरण एक प्रक्रिया है जिसके कारण लोग नगरीय कहलाते हैं, नगरों में रहने लगते हैं, कृषि के स्थान पर अन्य व्यवसायों को अपनाते हैं जो नगर में उपलब्ध है और अपने व्यवहार–प्रतिमान में अपेक्षाकृत परिवर्तन का समावेश करते हैं।
- मिचेल (Mitchel) के अनुसार : "नगरीकरण, नगरीय बनने की प्रक्रिया है जिसमें लोग नगरों की ओर गमन करते है, कृषि को छोड़कर अन्य नगरीय व्यवस्थाओं को ग्रहण करते हैं और इसके साथ–साथ व्यवहार प्रतिमानों में भी परिर्वतन लाते हैं।"
- एम०एन० श्रीनिवास (M.N. Srinivas) के अनुसार : "नगरीकरण का तात्पर्य केवल सीमित क्षेत्र में अधिक जनसंख्या से नहीं है बल्कि सामाजिक–आर्थिक सम्बन्धों में होने वाले परिवर्तनों से है।"

- नेल्स एण्डरसन (Neils Anderson) के अनुसार : "नगरीकरण का अर्थ है व्यक्तियों का ग्रामीण क्षेत्रों से औद्योगिक आवास की ओर बढत्रना व कृषि के स्थान पर गैर कृषि कार्यो का अपनाना।

NOTES

- एम0एस0ए0 राव (M.S.A. Rao) के अनुसार : "नगरीकरण एक प्रक्रिया है जिसके कारण ग्रामीण लोग नगरीय व्यवहारों को अपनाते हैं।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर नगरीकरा की निम्नलिखित विशेषताएं प्रकट होती हैं–

1. नगरीकरण, सामाजिक परिवर्तन की एक प्रक्रिया है, जो ग्रामीण व्यवहार प्रतिमानों को नगरीय व्यवहार प्रतिमानों में परिवर्तित कर देती है।
2. नगरीकरण, वह प्रक्रिया है जिसमें ग्रामीण क्षेत्रों की जनसंख्या, नगरीय क्षेत्रों की और स्थानान्तरित होती है जिससे नगरों का विकास, प्रसार व वृद्धि होती है।
3. नगरीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत लोग कृषि कार्यो की अपेक्षा अन्य व्यवस्थाओं एवं उद्योगों को अधिक महत्व देते हैं।
4. नगरीकरण एक जीवन की विधि है जिसका प्रसार नगरों से गॉवो की ओर होता है।
5. नगरीकरण एं निरंन्तर चलने वाली प्रक्रिया है उसकी सीमा का कोई मापदण्ड निर्धारित करना अत्यन्त कठिन है।
6. नगरीकरण का प्रमुख लक्षण धर्म तथा संस्कृति की अपेक्षा विज्ञान एवं शिक्षा को महत्व देता है।
7. नगरीकरण के अन्तर्गत व्यवसाय परिवर्तन के साथ–साथ नगरीय जीवन मल्यों मनोवृत्तियों तथा व्यवहार के परिवर्तन भी सम्मिलित है। अतः वे ग्रामीण व्यक्ति भी जो कि अपने परास्परिक व्यवसाय को नहीं त्यागते है, नगरीय हो सकते हैं यदि वे नगरीय जीवनशैली, मनोवृत्ति, मूल्य, व्यवहार एवं दृष्टिकोण को अपना लेते हैं।

नगर का स्वरूप (Nature of Town or City) :

NOTES

नगर का स्वरूप उसकी आबादी पर निर्भर होता है। भारत में नगर के स्वरूप निर्धारण हेतु भारतीय जनगणना आयोग ने कुछ मानक निर्धारित किये हैं–

1. उस स्थान की जनसंख्या 50000 से अधिक हो।
2. वहॉ की जनसंख्या का घनत्व कम से कम 400 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी0 हो।
3. वहॉ के 75 प्रतिशत कार्यशील पुरूष गैर कृषि कार्यो में लगे हों।
4. वहॉ नगर पालिका, नगर निगम, कन्टोमेन्ट बोर्ड, नोटीफाइड एरिया कमेटी जैसी कोई भी प्रशासकीय व्यवस्थ हो।

भारत में नगरीकरण की प्रवृत्ति (Trend towards Urbanization in India) :

भारत की अधिकांश जनता गॉवों में निवास करती है। सन् 1901 से लेकर अब तक नगरीय जनंसख्या में लगातार वृद्धि हुई है। सन् 1921 से लेकर अब तक नगरों की जनसंख्या में दोगुने से अधिक वृद्धि हुई है। सन् 1921 में नगरों में निवास करने वाले लोगों का प्रतिशत 11.18 था, जो सन् 1991 में बढकर 25.72 प्रतिशत हो गया। यह जनसंख्या का प्रतिशत सन् 1971 में 19.19 प्रतिशत, 1981 में 23.34 प्रतिशत और 1991 में 25.72 प्रतिशत था, सन् 1991 में नगरों की संख्या 3768 थी और नगरीय जनसंख्या 21.72 करोड थी जनगणना 2001 के अनुसार भारत की 27.72 प्रतिशत जनसंख्या नगरों निवास करती है जबकि 1901 में नगरीय जनसंख्या का अनुपात मात्र 10.84 प्रतिशत था। भारत में 28.53 करोड जनसंख्या नगरों में निवास करती है तथापि नगरीय जनसंख्या का वास्तविक प्रतिशत अत्यन्त कम है।

सन् 2001 की जनगणना के अनुसार दस लाख से अधिक आबादी वाले नगरों की संख्या 35 है जबकि 1991 में दस लाख आबादी वाले नगरों की संख्या 23 थी। 2001 की जनगणना के अनुसार 50 लाख से अधिक आबादी के नगरों में क्रमशः बृहद–मुम्बई, कोलकाता, दिल्ली, चेन्नई, बंगलौर और हैदराबाद है।

पचास लाख से अधिक आबादी वाले नगरों की जनसंख्या

शहर का ना	जनसंख 2001
बृहद मुम्बई	16,368,084

कोलकाता	13,216,546
दिल्ली	12,791,458
चेन्नई	6,424,624
बैंगलोर	5,686,844
हैदराबाद	5,533,640

NOTES

भारत में जनसंख्या के आधार पर नगरों को निम्नलिखित 6 श्रेणियों में विभाजित किया गया है–

1. छोटे कम्बे 5000–10,000
2. कस्बे 10,000–20,000
3. विशाल कस्बे 20,000–50,000
4. नगर 50,000–1,00,000
5. महानगर 1,00,000–10,00000
6. मेट्रोपॉलिटन नगर 10,00,000–1,00,00,000

नगरीकरण और शिक्षा का सम्बन्ध (Relationship between urbatization and education):

नगरीकरण और शिक्षा में घनिष्ठ सम्बन्ध है। शिक्षा के द्वारा व्यक्ति में सोंचने विचारने की क्षमता का विकास होता है। कारणीय अकारणीय कर्तव्यों का बोध होता है। व्यवसाय में निपुणता प्राप्त करने की कला आती है। व्यक्ति संस्कृति के तत्वों से परिचित होता है अन्ततः वह ग्रामीण परिवेश में अलग हटकर अपने श्रम का अधिक लाभ प्राप्त करने के निमित, सुख सुविधाओं का भरपूर लाभ उठाने के निमित नगरीकरण के द्वारा सामाजिक परिवर्तन को मूर्त रूप देता हे। वहीं नगरीकरण से शिक्षा भी प्रभावित होती है। शिक्षा सांस्कृतिक परिवर्तनों के अनुरूप बनती है। पाठ्चर्या को आधुनिक आवश्यकता के अनुरूप बनाया जाता है। शिक्षण विधियों का स्वरूप परिवर्तित होता है। शिक्षक नवीन नवाचारों को अपने शिक्षण पद्धति में महत्व देते है। इस प्रकार नगरीकरण शिक्षा को भी प्रभावित करती है और स्वयं शिक्षा से प्रभावित भी होती है। नगरीकरण एवं शिक्षा के सम्बन्ध को दो तरह से समझा जा सकता है–

(A) शिक्षा पर नगरीकरण का प्रभाव (Impact of Urbanization on Education)

(B) नगरीकरण पर शिक्षा का प्रभाव (Impact of Education on Urbabization)

NOTES

(A) शिक्षा पर नगरीकरण का प्रभाव

(Impact of Urbanization on Education)

नगरीकरण से शिक्षा का स्वरूप परिवर्तित होता है। शिक्षा को आधुनिकता के साथ चलना पड़ता है। शिक्षा में आज जो परिवर्तन किये जा रहे है वे नगरीकरण के प्रभाव के कारण ही है। सूचना क्रान्ति के विविध पहलुओं को शिक्षा से जोडने की संकल्पना नगरीकरण का ही परिणाम है। यही कारण है कि गॉवों में दी जाने वाली शिक्षा और नगरों में दिये जाने वाले शिक्षा में अन्तर परिलक्षित होता है। पाठ्चर्या में विविध पहलुओं का समावेश भी नगरीकरण के कारण ही होता है। नगरवासियों की आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुए पाठचर्या में औद्योगिक प्रतिष्ठानों की कार्यप्रणाली, व्यवसाय व वार्णिजय, विज्ञान, तकनीकी विषयों को महत्व दिया जाता है। ग्रामीणों की शिक्षा में कृषि, बागवानी, काष्ठकला इत्यादि रखा जाता है। इस प्रकार पाठचर्या भी नगरीकरण से प्रभावित होती है।

शिक्षा वृद्वि विधि पर भी नगरीकरण का प्रभाव पडता है। वर्तमान समय में नगरों में कम्प्यूटर, इण्टरनेट, से सुसज्जित प्रयोगशाला, दृश्य–श्रव्य साधनों की प्रचुरता से युक्त विश्वविद्यालय नगरीकरण से ही प्रभावित है। दूरस्थ, शिक्षा, पत्राचार शिक्षा, मुक्त विद्यालय/विश्वविद्यालय आदि सभी के केंन्द्र विशेषतः नगरों में ही व्यवस्थित है। जितने भी विशिष्ट शिक्षा केन्द्र, पब्लिक स्कूल, विकलांग विद्यालय स्थापित होते हैं सभी नगरों में ही खोले जाते हैं। यह नगरीकरण का विद्यालय पर पड़ने वाले प्रभाव परिचायक हैं।

शिक्षा और शिक्षार्थी भी नगरीकरण से प्रभावित होते हैं। नगर के शिक्षक गॉव के शिक्षक से अधिक अनुभव एवं कौशल से परिपूरित होते हैं। ऐसा इस कारण से होता है क्योंकि नगर के शिक्षकों को प्रचुर मात्रा में साहित्य एवं सूचनाऐं प्राप्त होती रहती है। शिक्षार्थी में अपने हितो, अधिकारों का बोध नगरीकरण के कारण ही होता है। राष्ट्रीय एकता, सहिष्णुता, समन्वय की सीख शिक्षार्थी नगरी परिवेश में ज्यादा सीखेत है। अपने हितों की रक्षा के लिए नगरीय विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में छात्रों द्वारा 'छात्र–संघ' का सृजन भी नगरीकरण का परिणाम ही है।

(B) नगरीकरण पर शिक्षा का प्रभाव

(Impact of Education on Urbabization)

NOTES

शिक्षा सामाजिक परिवर्तन में एक साधन की भूमिका निभाती है। नगरीकरण, सामाजिक परिर्वतन का एक कारक या आयाम है। ऐसी स्थिति में शिक्ष नगरीकरण को भी प्रभावित करती है। वस्तुतः औद्योगकरण से ही नगरीकरण का प्रसार होता है। औद्योगीकरण हेतु कुशल जनशक्ति या आदमियों की जरूरत होती है। कुशल जनशक्ति या मानव संसाधन का विकास शिक्षा करती है। शिक्षा से ही व्यक्ति व्यवसायिक कुशलता एवं किसी कार्य को करने के तौर तरीके सीखता है। परिणामतः औद्योगिक संस्थानों में कार्य करता है। औद्योगिक संस्थान प्रायः नगरों में ही स्थापित हों है। जब व्यक्ति कार्यदक्ष होकर इन नगरों में स्थापित संस्थानों में नौकरी करता है तो उसका अधिकांश समय नगरों में ही व्यतीत होता है। अन्ततः वह नगरों में आवास बना लेता है जिससे आजीवन नगर का निवासी बन जाता है जो नगरीकरण कहलाता है। इस प्रकार शिक्षा नगरीकरण का संवाहक है।

शिक्षा साक्षरता का प्रचार एवं प्रसार करके, रोजगार के अवसर सृजित करके, लोगों में जागरूकता लाकर, नगरीकरण को विकसित बनाती है। शिक्षा मनुष्य को आगे गढ़ाकर प्रगतिशील चिन्तन की क्षमता विकसित कर, अधिक लोगों से मेल–जोल एवं विचार विनिमय का अवसर देती है। इससे व्यक्तियों में ऐसी क्षमता एवं मनोवृत्ति उपजती है कि वह नगरों में जाकर बस जाता है और नगरीकरण को प्रश्रय देता है।

नगरीय जीवन शैली में हर एक व्यक्ति समायोजित नहीं हो सकता है। शिक्षा से व्यक्ति इस प्रकार की जीवन शैली में समायोजन क्षमता अर्जित करता है। ग्रामीण परिवेश की मान्यताओं से अलक हटकर वह आधुनिकता के परिवेश से अच्छादित हो जाता है। छूआछूत, अस्पृश्यता, पर्दा प्रथा, जातिगत बन्धन समाप्त हो जाता है। व्यक्ति के आचरण एवं व्यवहार का स्वरूप बदल जाता है। धारणाओं, विचारधाराओं, मान्यताओं में परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगता है। व्यक्ति में नगरीकरण से समायोजन हेतु उसमें उत्पन्न होने वाले नवीन गुणों, योग्यताओं एवं मनोवृत्ति का विकास शिक्षा के द्वारा ही होता है।

नगरीकरण के शैक्षिक निहितार्थ

NOTES

नगरीकरण की प्रक्रिया का शिक्षा से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। नगर का जीवन सुसंस्कृत होता है। शिक्षा संस्कृति का अंग है। शिक्षा के कारण नगरीकरण की प्रक्रिया प्रभावित होती है। शिक्षा द्वारा व्यक्ति सुसंस्कृत बनता है। समाज में रहने के गुणों को सीखता है। शिक्षा द्वारा ही व्यक्ति सभ्य होकर उचित व्यवहार करता है और समाज में समायोजन करता हुआ प्रेम, दया, परोपकार आदि गुणों को सीखता है। नगरीकरण को बढ़ावा देने के लिए शिक्षा नागरिकों को प्रशिक्षण देकर नागरिकता के गुणों का विकास करती है। शिक्षा नगरीकरण को प्रभावित भी करती है। शिक्षित व्यक्ति विशिष्ठ एवं कुशल व्यवसायों की खोज करते हैं। शिक्षा का एक आवश्यक कार्य यह है कि नगरीकरण से प्राप्त बुराइयों को दूर करने का प्रयास करे। नगरीकरण के प्रभाव से भारत में संयुक्त परिवार टूट रहे हैं जिससे बालकों की शिक्षा पर बड़ा दुष्प्रभाव पड़ रहा है। परिवार शिक्षा का सशक्त अनौपचारिक अभिकरण है और इसके अभाव की पूर्ति पूर्व प्राथमिक विद्यालय नहीं कर पा रहे हैं। शिक्षा द्वारा यह प्रयास किया जाना चाहिए कि नगरी करण ने जिस अस्थिरता, वर्ग संघर्ष, बेकारी, असंतोष, एकाकी जीवन आदि को जन्म दिया है, उसके कुप्रभावों को दूर किया जाए।

भारत की अधिकांश जनता गांवों में निवास करती है। अतः हमारी शिक्षा इस प्रकार की होनी चाहिए कि गांवों के नवयुवकों में गांवों से पलायन की प्रवृत्ति विकसति न हो जिससे नगरों में बेकारी की समस्या कम हो और ग्रामीण शिक्षित युवकों के ज्ञान और अनुभव से गांवों के विकास में सहायता मिल सके। शिक्षित युवकों को नगरों की ओर पलायन की प्रवृत्ति से बचाना ही शिक्षा का कार्य है।

नगरीकरण का शिक्षा पर प्रभाव अनेक रूपों में दृष्टिगोचर होता है। नगरीकरण के कारण ही आज बड़े–बड़े तकनीकी एवं व्यवसायिक महाविद्यालयों की स्थापना बल पकड़ती जा रही है। आज प्रत्येक नगर, उपनगर, मुहल्ले में शिशु विद्यालय हैं। इस प्रकार नर्सरी विद्यालयों किण्डरगार्टन स्कूल, माण्टेसरी विद्यालयों की भी बाढ़ नगरीकरण का सीधा परिणाम है। नगरों में अनेक प्रकार के व्यवसायों का उदय एवं विशिष्ट व्यवसायिक विद्यालयों की स्थापना होती है जिससे नगरीय समाज को सभ्य, सुसंस्कृत बनाया जा सके। नगर के निवासी ग्रामीणों से अधिक शिक्षित, कला–कौशल में अधिक निपुण, ज्ञान, विज्ञान व तकनीकी में पारंगत होते हैं। ये औपचारिक शिक्षा की सुविधाओं का अधिकतम उपयोग करते हैं। शिक्षा का लक्ष्य कुशल नागरिक बनाना है। नगर तकनीकी, वैज्ञानिक व औद्योगीकरण का विकास का केन्द्र होता है

अतः उससे पाठ्यक्रम भी प्रभावित होता है। पाठ्यक्रम में आवश्यकतानुसार परिवर्तन किए जाते हैं तथा विज्ञान, तकनीकी, औधोगिकी, व्यवसायिक सभी प्रकार की शिक्षा व्यवस्था की जाती है। नगरों में प्रयोगशाला की सुविधा, यंत्र, उपकरणों की व्यवस्था और दृश्य–श्रव्य सा मार्ग के माध्यम से शिक्षण प्रदान किया जाता है। नगरों में अध्यापक अधिक योग्य, प्रशिक्षित व अनुभवी होते हैं क्योंकि शिखा की सुविधाएँ अधिक होने से उन्हें अपने ज्ञान में अभिवृद्धि के अवसर प्राप्त होते है। शिक्षार्थी शिखा की सर्वोत्तम व्यवस्था के लिए मांग करते हैं।

NOTES

आधुनिकीकरण : अर्थ एवं परिभाषा (Modernisation)

आधुनिकीकरण परिवर्तन की प्रक्रिया है–जब समाज आधुनिक होता है तो प्राचीन व्यवस्थाओं से उसका सम्बन्ध टूटता जाता है, परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं होता है कि परम्परावाद और आधुनिकीकरण के बीच एक दीवार है। आधुनिकीकरण एक क्रमिक, मंद गतिवाली, निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है।

व्यक्ति कुछ अंशों में परम्परावादी होते हैं और कुछ बातों में आधुनिक भी दोनों प्रक्रियाएं एक साथ चलती हैं, जब तक समाज आधुनिक होता है, तो तीन प्रकार की प्रक्रियाएँ साथ घटित होती हैं–कुछ लोग परिवर्तन का समर्थन करते हैं, कुछ पूर्णतया विरोध और कुछ इसके विकास की गति धीमी चाहते हैं। फलतः पश्चिमी मूल्य एवं आदर्श तथा मापदण्ड एक साथ घटित होने के कारण टकराने लगते हैं।

आधुनिकीकरण एक अनुकरणात्मक प्रक्रिया नहीं है, यद्यपि सभी आधुनिकीकरण में कुछ न कुछ अनुकरण की मात्र निहित होती है, यह एक गतिशीलता की प्रक्रिया है, जिसमें समाज गतिशील होता है, पुरानी व्यवस्था को छोड़ता है, पुरानी तकनीकी को छोड़कर नई तकनीकी अपनाता है और व्यवहार के नये मापदण्ड विकसित करता है।

आधुनिकीकरण वैज्ञानिक प्रवृत्ति का विकास है, जब एक समाज आधुनिक होता है तो वह अंधविश्वासों को छोड़कर अपने संसाधनों का प्रयोग आर्थिक विकास करता है।

आधुनिकीकरण का आरम्भ सर्वप्रथम यूरापीय समाजों में हुआ किन्तु आज यह एक विश्वव्यापी अवधारणा बन गया है। यही कारण है कि समाजशास्त्र, राजनीति शास्त्र तथा अनेक दूसरे सामाजिक विज्ञानों में इस अवघारणा के स्पष्टीकरण का प्रयास किया गया है। आधुनिकीकरण बाह्य रूप से एक सरल अवधारणा प्रतीत होता है किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से यह अवधारणा इतनी जटिल है कि न तो इसे किसी एक परिभाषा द्वारा स्पष्ट किया जा सकता

है और न ही विभिन्न समाजशास्त्री इसके बार में कोई ऐसा विचार रखते हैं जो सर्वमान्य हो। विभिन्न समाजशास्त्रियों एवं विद्वानों द्वारा दी गई मुख्य परिभाषाओं से अवगत होने का प्रयास करेंगे।

NOTES

- विल्बर्ट मूरे (wilbert moore) – के अनुसार, "आधुनिकीकरण एक क्रान्तिकारी परिवर्तन है जो एक परम्परागत या पूर्व–आधुनिक समाज को पश्चिमी विश्व के विकसित, आर्थिक रूप से सम्पन्न और अपेक्षाकृत राजनीति रूप से स्थिरता वाले देशों की तकनीकी और सम्बद्ध सामाजिक संगठनों के प्रकारों की ओर ले जाता है।"

- लेवी (M.J. Levy) के अनुसार–"आधुनिकीकरण की परिभाषा शक्ति के जड़ स्त्रोंतों के उपयोग तथा ऐसे प्रयासों के प्रभाव में वृद्धि करने वाले उपकरणों के उपयोग पर आधारित है।"

- डॉ0 योगेन्द्र सिंह (Yogendra Singh)– ने भारतीय संदर्भ में आधुनिकीकरण की व्याख्या प्रस्तुत की है। उनके अनुसार–"सांस्कृतिक अनुक्रिया के एक विशेष रूप में आधुनिकीकरण वह अवधारणा है जिसमें मुख्य रूप से सर्वव्यापकता तथा विकास के लक्षण विद्यमान होते हैं। ये लक्षण अतिमानवता, सजातीयता से परे तथा अवैचारिक रूप में होते हैं।"

- एस0 सी0 दूबे (S.C. Dubey) के शब्दों में, "आधुनिकीकरण परिवर्तन का एक विशेष प्रारूप है जो सामाजिक संरचना, मूल्य उन्मेष, प्रेरणा एवं कुछ विशेष प्रतिमानों से सम्बद्ध है।"

- डॉ0 एम0 एन0 श्रीनिवास ने अपनी पुस्तक 'Modernization A Few Querries, 1969' में आधुनिकीकरण के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है– "किसी भी पश्चिमी देश के प्रत्यक्ष या परोक्ष सम्पर्क के कारण किसी गैरपश्चिमी देश में होने वाले परिवर्तनों के लिए प्रचलित शब्द आधुनिकीकरण है। इसके अंतर्गत, नगरीकरण साक्षरता, तर्क का विकास, वयस्क मताधिकार आदि आते हैं।"

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि आधुनिकीकरण एक जटिल प्रक्रिया है। जिसमें उन सभी तत्वों का समावेश है जो जीवन के भौतिक सामामजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक एवं सभी पक्षों से सम्बन्धित है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया एक बहुदिशा वाली प्रक्रिया (Multi-Demensional Process) है। यद्यपि यह प्रक्रिया एक मूल्य से बंधी हुई नहीं है किन्तु सामान्यतः इसका तात्पर्य इच्छित परिवर्तन से लगाया जाता है। उदाहरणार्थ यदि कोई

कहता है कि समाज का आधुनिकीकरण हो रहा है तो उसका तात्पर्य बुराई करना न होकर अच्छाई बताना होता है। एम0 एन0 श्रीनिवास भी आधुनिकीकरण को 'अच्छाई' के संदर्भ में लेते हैं उनके मत में आधुनिकीकरण एक तटस्थ शब्द नहीं है।

NOTES

बी0 बी0 शाह (B.B. Shah) ने अपनी पुस्तक 'Problems of Modernization of Education in India, (1969)' में आधुनिकीकरण को बहु–दिशा वाली प्रक्रिया मानते हुए आर्थिक, सामाजिक, रानीतिक, वैयक्तिक सभी क्षेत्रों में उसका अर्थ स्पष्ट किया है–

- आर्थिक क्षेत्र में आधुनिकीकरण का तात्पर्य अधिकाधिक उत्पादन, मशीनीकरण, औद्योगीकरण एवं नगरीकरण में वृद्धि से है।
- सामाजिक क्षेत्र में आधुनिकीकरण का तात्पर्य प्रदत्त पद के स्थान पर अर्जित पदों को महत्व देने तथा सभी के लिए अवसरों की समानता से है।
- राजनीतिक क्षेत्र में आधुनिकीकरण का तात्पर्य धर्मनिरपेक्ष व कल्याणकारी राज्य की स्थापना से है जो शिक्षा, स्वास्थ्य, मकान एवं रोजगार की व्यवस्था करें।
- वैयक्तिक क्षेत्र में आधुनिकीकरण का तार्त्प धर्मनिरपेक्ष, तार्किक, वैज्ञानिक और विश्वव्यापी दृष्टिकोण के विकास से लगाया जाता है।

आइजनस्टेंड (S.N. Eisenstandt) ने अपनी पुस्तक Modernization : Protest and Charge (1966) में आधुनिकीकरण के निम्नलिखित रूप बताये हैं–

1. आर्थिक क्षेत्र में : प्रौद्योगिकी का उच्च स्तर,
2. सांस्कृतिक क्षेत्र में : विभिन्न समाजों के साथ अनुकूलन की क्षमता में वृद्धि,
3. राजनीतिक क्षेत्र में : समूह में शक्ति का प्रसार, वयस्कों को मताधिकार द्वारा शक्ति प्रदान करना, प्रजातंत्र में भाग लेना,
4. संरचना के क्षेत्र में : सभी संगठनों के आकार का बढ़ना, उनमें जटिलता एवं विभेदकरण की दृष्टि से वृद्धि,
5. परिस्थितिकीय क्षेत्र में : नगरीकरण की वृद्धि।

एम0 एन0 श्रीनिवास (M.N. Srinivas) ने आधुनिकीकरण के तीन क्षेत्र बताये हैं, जो परस्पर सम्बन्धित हैं :–

NOTES

1. भौतिक संस्कृति का क्षेत्र,

2. सामाजिक संस्थाओं का क्षेत्र,

3. ज्ञान, मूल्य एवं अभिवृत्तियों का क्षे,।

ए0 आर0 देसाई (A.R. Desai) ने अपनी पुस्तक 'Modernization of Underdeveloped Societies' में आधुनिकीकरण को जीवन के सभी पहलुओं से सम्बन्धित माना है। उनके अनुसार विभिन्न क्षेत्रों में आधुनिकीकरण का आशय निम्नलिखित है–

1. आर्थिक क्षेत्र में–

(i) मशीन, तकनीकी एवं औजारों का प्रयोग,

(ii) उत्पादन, वितरण, यातायात, संचार आदि में पशु एवं मानव शक्ति के स्थान पर जड़ शक्ति का प्रयोग,

(iii) उच्च तकनीकी के प्रभाव के कारण उद्योग, व्यापार, व्यवसाय में वृद्धि,

(iv) बढ़ता हुआ औद्योगीकरण,

(v) अर्थव्यवस्था में उत्पादन एवं उपभोग में वृद्धि,

(vi) आर्थिक कार्यों में विशेषीकरण में वृद्धि,

2. सामाजिक क्षेत्र में–

(i) सामाजिक संरचना में परिवर्तन, प्रदत्त के स्थान पर अर्जित पदों का महत्व,

(ii) सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि, पुरानी मान्यताओं को ताड़कर नये व्यवहारों को अपनाना।

3. राजनीतिक क्षेत्र में–

(i) सार्वभौमिक सत्ता नागरिकों द्वारा प्राप्त, न कि ईश्वर प्रदत्त,

(ii) वयस्क मताधिकार के आधार पर राजनीतिक शक्ति का हस्तान्तरण,

(iii) समाज की केन्द्रीय, कानूनी, प्रशासकीय तथा राजनीतिक संस्थाओं का विस्तार एवं प्रसार।

4. सांस्कृतिक क्षेत्र में–

(i) नये सांस्कृतिक दृष्टिकोण का विकास जिससे योग्यता, अनुभव एवं सुख में वृद्धि हो,

NOTES

(ii) शिक्षा का विस्तार एवं विशिष्ट प्रकार की शिखा संस्थाओं की वृद्धि,

(iii) सभी प्रकार के समाजों के साथ समायोजन करने की धारणा का विकास, दूसरे लोगों के प्रति परानुभूति का बढ़ना, दूसरों का सम्मान करना, ज्ञान व तकनीकी में विश्वास पैदा होना इत्यादि।,

(iv) बौद्धिक क्षेत्र में–भौतिक एवं सामाजिक घटनाओं की तार्किक व्याख्या, जिसके फलस्वरूप परलोक के स्थान पर इस लोक का दृष्टिकोण पनपता है,

(v) परिस्थितिकीय क्षेत्र में–नगरीकरण की वृद्धि होती है।

प्रो0 लर्नर (Prof. Learner) मनोवृत्तियों में होने वाले परिवर्तन को आधुनिकीकरण की प्रमुख विशेषता मानते हैं।

उपर्युक्त विचारों से स्पष्ट है कि आधुनिकीकरण के सम्बन्ध में विभिन्न समाज में वैज्ञानिकों की भिन्न–भिन्न विचारधाराएँ हैं।

आधुनिकीकरण की विशेषताएँ

डेनियल लर्नर (Daniel Learner) ने अपनी पुस्तक 'The Passing of a Traditional Society: Modernizing the Middle East' में आधुनिकीकरण की निम्नलिखित विशेषताओं का वर्णन किया है–

1. बढ़ता हुआ नगरीकरण,
2. शिक्षा का प्रसार,
3. संचार साधनों में वृद्धि,
4. व्यापक आर्थिक साझेदारी,
5. प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि,
6. राजनीतिक सहभागिता,

7. सामाजिक गतिशीलता,

8. परानुभूति (Empathy)।

NOTES

एस0 सी0 दूबे (S.C. Dubey) ने अपने एक महत्वपूर्ण लेख 'Modernization and its Adaptive Demands in Indian Education' में आधुनिकीकरण की कई विशेषताओं का वर्णन किया है जो इस प्रकार हैं–

1. लक्ष्यों की स्पष्टता (Clarity of goals),
2. लक्ष्यों का एकीकरण (Integration of goals)
3. परानुभूति (Empathy),
4. उच्च सहभागिता (High degree of participation),
5. उच्च स्तरीय प्रौद्योगिकी (High level of Technology),
6. सम्प्राप्ति अभिप्रेरणा (Achievment Motivation),
7. मानसिक गत्यात्मकता (Mental Mobility),
8. परविर्तन की वांछनीयता एवं सम्भावना में विश्वास (Faith in desirability and possibility of change),
9. धन, कार्य बचत एंव जोखिम उठाने के प्रति नीवन दृष्टिकोण (New attitude Towards wealth, work savings and rist-taking),
10. उच्च स्तरीय संस्थाएँ एवं शिक्षा (Higher level Istitutions and Education),
11. तात्कालिक संतुष्टि की अपेक्षा दूरवर्ती लक्ष्यों पर ध्यान (Attention towards long range goals in place of immediate gratification).

NOTES

1. कोठारी आयोग का कथन है कि–"आधुनिकीकरण शिक्षा के विस्तार, कुशल नागरिकों की उपलब्धता और पर्याप्त योग्य एवं बुद्धिमान वर्ग को प्रशिक्षित करने से होता है।" इससे यह स्पष्ट है कि आधुनिकीकरण एवं शिखा में घनिष्ठ सम्बन्ध है। शिक्षा समाप्त विकास का मूलाधार है। शिक्षा से औद्योगीकरण का प्रसार होता है। व्यक्ति में सामाजिक गुणों एवं व्यवसायिक गूणों का विकास होता है। देश की साक्षरता दर बढ़ती है। विज्ञान के विकास के परिणाम स्वरूप नये–नये शोघ एवं आविष्कार होते हैं। उच्च नागरिकता का विकास होता है। व्यक्ति के रहन–सहन, खान–पान, वेश–भूषा तथा मनोरंजन के साधनों में बदलाव आता है। व्यक्ति पुरातन मान्यताओं एवं जीवन शैली को छोड़कर नवीन मूल्यों, दृष्टिकोणों, आदतों, तथा कौशलों को अपनाते हैं। यह सब शिक्षा का आधुनिकीकरण पर प्रभाव (Impact of education on modernization) का परिचायक और आधुनिकीकरण और शिक्षा के अटूट सम्बन्ध को दर्शाता है।

2. आधुनिकीकरण भी शिक्षा को इतना प्रभावित करता है कि शिक्षा नया कलेवर या स्वरूप धारण कर लेती है। शिक्षा अपने पुराने उद्देश्य, शिक्षण विधि, पाठ्यचर्या एवं स्वरूप को छोड़कर समय सापेक्ष नवीन आयामों से जब सुसज्जित होती है तो वह आधुनिकीकरण के कारण ही होता है। आधुनिकीकरण के कारण आज शिक्षा विज्ञान की कोटि में तथा सूचना संक्रान्ति के सम्प्रेषक के रूप में स्थापित है। शिक्षा में कम्प्यूटर, इण्टरनेट, मुक्त विद्यालय, विश्वविद्यालय, पत्राचार शिक्षा का अभ्युदय, मानवाधिकार, पर्यावरण के प्रति जागरूकता आदि आधुनिकीकरण के ही परिणाम है।

आज के भूमण्डलीकरण के युग में वैश्विक प्रतिस्पर्धात्मक परिवेश में समाज एवं शिक्षा के आधुनिकीकरण के लिए पाठ्यचर्या में बदलाव लाया जा रहा है। पाठ्यचय्या को अनुभव, क्रिया, विज्ञान, सूचना प्रौद्योगिकी तथा नूतन आयामों से परिपूरित किया जा रहा है। सीखने वाले समाज के विकास के लिए पाठ्यचर्या को वैश्विक स्तर पर समान रूप देने की वकालत की जा रही है। यह सब आधुनिकीकरण का शिक्षा पर पड़ने वाले प्रभाव का प्रतिफल है। इसी प्रकार शिक्षण विधि, शिक्षक–शिक्षार्थी सभी में बदलाव परिलक्षित हो रहा है। शिक्षण विधि को मनोवैज्ञानिक तथा वैज्ञानिक स्वरूप पर आधारित करना। शिक्षक एवं शिक्षार्थी को नवीन गतिविधियों से परिचित कराने के लिए विशेष प्रयास यिका जाना ओरिएण्टेशन तथा रिफ्रेशर कोर्सों से शिक्षकों को नवीन विधियों एवं दृष्टिकोणों से परिचित कराना आदि आधुनिकीकरण के

NOTES

परिणाम स्वरूप ही सम्भव हुआ है। विद्यालयों को उद्योग केन्द्र के रूप में, प्रयोगशाला के रूप में, सूचना सम्प्रेषण के रूप में, विविध नवीन तकनीकी एवं यंत्रों से जोड़ने की जो कवायद की जा रही है। यह सब शिक्षा पर आधुनिकीकरण का प्रभाव (Impact of modernisation on education) कहा जा सकता है।

अतः कहा जा सकता है कि शिक्षा आधुनिकीकरण को प्रभावित करती है तो आधुनिकीकरण भी शिक्षा को प्रभावित करता हैं यह आधुनिकीकरण एवं शिक्षा के निकटवर्ती सम्बन्ध का द्योतक है।

पश्चिमीकरण (Westernization) :

आधुनिक काल में भारत में पाचात्य संस्कृति के प्रभाव से व्यापक परिवर्तन हुए है। इस प्रकार पश्चिमीकरण सामाजिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण कारक है। पश्चिमीकरण के द्वारा भारतीय समाज में परिवार की संस्था, विवाह की संस्था, समाज के विभिन्न सद्स्यों के परस्पर सम्बन्ध, यौन सम्बन्धी मूल्य स्त्रियों के साधन इत्यादि विभिन्न तत्वों में महत्वपूर्ण परिवर्तन दिखलाई पड़ता है। पश्चिमीकरण के साथ–साथ पश्चिम का भौतिकवाद, विज्ञानवाद, उपनयोगितावाद, व्यवहारवाद, व्यक्तिवाद इत्यादि विभिन्न प्रवृत्तियॉ पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित भारतीय नर–नारियों में देखी जा सकती है फिर भी पाश्चात्य सभ्यता से जितना अधिक ग्रहण किया गया है उसकी तुलना में सांस्कृतिक प्रभाव अभी बहुत कम है। इस क्षेत्र में सांस्कृतिक में सांस्कृतिक विलम्बना दिखाई पड़ता है।

Unit- III

संस्कृति Culture

NOTES

संस्कृति मानव की श्रेष्ठम धरोहर है जिसकी सहायता से वह पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ता हैं, प्रगति की ओर उन्मुख होता है। संस्कृति एक ऐसा पर्यावरण है जिसमें रहगर मनुष्य एक सामाजिक प्राणी बनता है और प्राकृतिक दशाओं को अपने अनुकूल बनाने की क्षमता प्राप्त करता है। तात्पर्य यह है, कि व्यक्ति को एक सामाजिक प्राणी बनाने मे जितने तत्वों का योगदान होता है। इन सभी तत्वों की व्यवस्था का नाम संस्कृति हैं जन्म के समय बालक न तो सामाजिक प्राणी बनाने में सहायता प्रदान करती है। समान्य शब्दों में कहा जा सकता है कि प्राकृतिक शक्तियों को छोड़कर जितनी भी मानवीय दशाएँ हमें चारों ओर से प्रभावित करती हैं, उन्हीं की सम्पूर्ण व्यवस्था को हम संस्कृति कहते है।

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से संस्कृति वह विशेषता है जिसमें अन्य व्यक्ति भाग ले सकें। अर्थात यदि कोई नये विचार या कार्य करने के ढंग को दूसरे व्यक्ति न अपनायें अथवा न ग्रहण करें तो इन विचारों एवं प्रविधियों को संस्कृति में सम्मिलित नहीं किया जा सकता। जैसे निर्जन स्थान पर निवास करने वाला व्यक्ति यदि कोई महत्वपूर्ण खोज कर भी ले तो जब तक उसके अतिरिक्त अन्य व्यक्ति उसका उपयोग न कर ले तब तक वह वस्तु संस्कृति का अंग नहीं समझी जाएगी।

संस्कृति की परिभाषायें :

साधरण बोलचाल में संस्कृति का अर्थ सुन्दर, परिष्कृत, रूचि कर या कल्याणकारी व्यवहार या गुणों से लिया जाता है परन्तु यह संस्कृति की शास्त्रीय परिभाषा नहीं है। कुछ परिभाषायें निम्न हैं:–

1. टायलर : संस्कृति एक जटिल सम्पूर्ण है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कलायें नीति, विधि, रीति–रिवाज और समाज के सदस्य होकर मनुष्य द्वारा अर्जित अन्य योग्यतायें और आदतें शामिल है।
2. रेडफील्ड : संस्कृति कला और उपकरणों से अभिव्यक्त परम्परागत ज्ञान का वह संगठित रूप है जो परम्परा के द्वारा संगठित होकर मानव समूह की विशेषबा बन जाता है।

NOTES

3. जोसेक पीपर : संस्कृति प्राणी की सभी प्राकृतिक वस्तुओं और उन उपहारों तथा गुणों का सार है जो मनुष्य से सम्बन्ध रखते हुए उनकी आवश्यकताओं के तात्कालिक क्षेत्र से परे हैं।

इस प्रकार संस्कृति में वह सब सम्मिलित है जो मानव ने अपने व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के मानसिक और आध्यात्मिक क्षेत्र मे आज तक अर्जित किया है। मैकाइवर और पेज के शब्दों में "यह मूल्यों, भावात्मक लगावों तथा बौद्धिक अभिमानों का क्षेत्र है। इस प्रकार संस्कृति सभ्यता का प्रतिवाद है। वह हमारे रहने और सोचने के ढंगों में दैनिक कार्य – कलापों में कला में साहित्य में धर्म में, मनोरंजन और सुखोपयोग में हमारी प्रकृति की अभिव्यक्ति हैं

संस्कृति की आवश्यक विशेषतायें :

1. संस्कृति में मनुष्य निर्मित और वे वस्तुयें सम्मिलित है जिनमें मनुष्य संशोधन कर सकता है।
2. नये तत्वों के समावेश से संस्कृति की जटिलता और गुण बढ़ते हैं।
3. यह पीढ़ी दर पीढी मानसिक रूप में संचारित होती रहती है।
4. संस्कृति केवल मानव समाजों में पाई जाती है।

संस्कृति की प्रकृति :

संस्कृति की प्रकृति के बारे में महम्वपूर्ण बातें निम्नलिखित हैः–

1. संस्कृति सीखे हुए गुण है :

संस्कृति जन्मजात नहीं है सामाजीकरण के द्वारा सीखे हुए गुण, आदतें तथा विचार आदि ही संस्कृति कहलाती है। मनुष्य में प्रतीकात्मक संचार की योग्यता होने के कारण वह संस्कृति व्यवहार को ग्रहण कर लेता है।

2. संस्कृति संचारशील है :

संस्कृति का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को संचार होता है इससे संस्कृति में बराबर वृद्धि होती रहती है। संचार के कारण नई पीढ़ी पिछली पीढ़ी के अनुभवों से लाभ उठाती है। इस प्रकार संस्कृति अर्द्धस्थायी हो जाती है और किसी व्यक्ति या समूह के रहने से उस पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता।

3. संस्कृति वैयक्तिक नहीं, बल्कि सामाजिक है :

संस्कृति के सम्वर्द्धन और संचार में हर एक व्यक्ति कुछ न कुछ भाग लेता है, परन्तु संस्कृति वैयक्तिक न होकर सामाजिक है। उसमें समूह के सदस्यों की सामान्य अपेक्षायें शामिल होती है। समूह से बाहर रहकर व्यक्ति संस्कृति की सृष्टि नहीं रक सकता।

NOTES

4. संस्कृति आदर्शात्मक है :

संस्कृति में व्यवहार के वे आदर्श प्रतिमान या आदर्श नियम सम्मिलित है जिनके अनुसार समाज के सदस्य आचरण करने की चेष्टा करते है इन आदर्श, नियमों तथा प्रतिमानों को समाज स्वीकार करता है।

5. संस्कृति कुछ आवश्यकताओं को पूरा करती है :

संस्कृति मनुष्य की उन नैतिक तथा सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करती है जो स्वयं साध्य है संस्कृति में सामूहिक आदतें सम्मिलित है। आदतें उन्हीं कामों की पड़ती है जिनसे कुछ न कुछ आवश्कतायें पूरी होती है। इन आवश्यकताओं को पूरा किये बिना संस्कृति का जीवित रहना असम्भव है। संस्कृति का जो अंश सामाजिक सन्तोष में सहायक नहीं होता, वह गायब हो जाता है।

6. संस्कृति में उपयोजन की योग्यता होती है :

पर्यावरण के अनुसार संस्कृति बराबर बदलती रहती है और इस परिवर्तन से बाहरी शक्तियों से उसका उपयोजन होता रहता है, परन्तु विकसित होने पर प्राकृतिक पर्यावरण का प्रभाव घटता जाता है। इसके अलावा संस्कृति के विभिन्न अंगों का भी विकास होता रहता है और उनमें आन्तरिक उपयोजन की जरूरत पडती है।

7. संस्कृति में एकीभूत होने का गुण है :

संस्कृति में एक क्रम और एक संगठन होता है उसके भिन्न–भिन्न भाग आपस में एकीभूत रहते हैं और जो भी नया तत्व आता है वह भी उसमें मिल जाता है जिन संस्कृतियों पर बाहरी प्रभाव अधिक पड़ता है वे अधिक विजातीय होती है परन्तु सभी संस्कृतियों में कुछ न कुछ एकभूतता की प्रवृत्ति अवश्य दिखाई पड़ती है।

इस प्रकार संस्कृति सामाजिक–आदर्शात्मक और सीखी हुई होती है तथा मनुष्य की बहुत सी आवश्कयताओं को पूर्ण करती है। उसमें संचार, उपयोजन तथा एकभूतता के गुण

होते हैं। यह मनुष्य का विशेष गुण है। उसकी सामाजिक विरासत है। उसकी श्रेष्ठता का सबूत है।

NOTES

भौतिक तथा अभौतिक संस्कृति में अन्तर :

	भौतिक संस्कृति		अभौतिक संस्कृति
1.	भौतिक संस्कृति में मनुष्य द्वारा निर्मित उन सभी पदर्थो का समावेश होता है जो मूर्त है इस प्रकार भौतिक संस्कृति मापनीय होती है। इसके विकास अथवा ह्रास का निश्चित माप किया जा सकता है।	1.	अभौतिक संस्कृति का निर्माण, विचारों, विश्वासों और आदर्श नियमों से होने के कारण इसका रूप अमूर्त होता है। यही कारण है कि एक छोटी अवधि में अभौतिक संस्कृति में होने वाले किसी भी परिवर्तन को समझ सकता बहुत कठिन है।
2.	भौतिक संस्कृति इस अर्थ में सरल है कि कोई भी व्यक्ति उपयोगिता के आधार पर इसके लाभ अथवा हानि को समझा सकता है।	2.	अभौतिक संस्कृति की प्रकृति तुलानात्म्क रूप से जटिल है कोई भी व्यक्ति इस बात को प्रमाणित नही कर सकता कि उसके विचार और विश्वास इसकी संस्कृतियों से अच्छे अथवा बुरे हैं।
3.	साधारणतया भौतिक संस्कृति में गुणात्मक वृद्धि की प्रवृत्ति होती है। इसका तात्पर्य है कि भौतिक अविष्कारों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती रहती है।	3.	अभौतिक संस्कृति में या तो वृद्धि बहुत धीरे–धीरे होती है अथवा किसी अवधि में हय वृद्धि बिल्कुल रूक जाती है कारण यह है कि काफी प्रयन्त करने पर भी कोई व्यक्ति यह दावा नहीं कर सकता है कि उसके नये विचार अथवा विश्वास पहले की तुलना मे अच्छे ही है।
4.	भौतिक संस्कृति वैकल्पिक है। यह हमारी इच्छा और साधनों पर निर्भर है कि हम नैतिक संस्कृति के किन तत्वों को ग्रहण करे और किन्हें छोड़ दें। किसी विशेष तत्व को ग्रहण करने के लिए हमें बाध्य	4.	अभौतिक संस्कृति इस अर्थ में बाध्यतामूलक है कि प्रत्येंक व्यक्ति से इसी के अनुसार व्यवहार करने की आशा की जाती है। अपने समाज के विश्वासों और नियमों की अवहेलना करने से व्यक्ति को सामाजिक

	नहीं किया जा सकता है।		दण्ड मिलने का भय रहता है।
5.	भौतिक संस्कृति परिवर्तनशील है। जब कभी व्यक्तियों की आवश्यतायें बदलती है तो पुरानी वस्तुओं के स्थान पर नयी वस्तयें ग्रहण कर ली जाती है परिवर्तन की यह गति साधारणतया काफी तेज होती है।	5.	अभौतिक संस्कृति में स्थिरता का गुण है। व्यक्ति न केवल स्वयं ही इसमें किसी तर का परिवर्तन करने से डरते हैं बल्कि समाज के दूसरे सदस्य भी उन्हें ऐसा करने से रोक देते हैं। विशेष दशाओं में परिवर्तन यदि होता भी है तो बहुत धीरे–धीरे।
6.	भौतिक संस्कृति बाध्य है। इसका मानवीय और सांमाजिक गुणों से अधिक सम्बन्ध नहीं होता। यही कारण है कि इसमें वृद्धि होने से भौतिकवाद, व्यक्तिवाद और औपचारिकता को प्रोत्साहन मिलता है।	6.	अभौतिक संस्कृति अपनी प्रकृति से स्वाभाविक और आन्तरिक होती है। यह मानवीय गुणो, समाज के अन्तिम लक्ष्यों तथा सामूंहिकता को सबसे अधिक महत्व देती है।
7.	भौतिक संस्कृति कभी विशुद्ध नहीं होती। इसका कारण यह है कि प्रत्येक समूह अन्य समाजों के अविष्कारों और भौतिक पदार्थो से लाभ उठाने के लिए उन्हें ग्रहण कर लेता है।	7.	अभौतिक संस्कृति में मिश्रण की प्रक्रिया को सदैव रोकने का प्रयत्न किया जाता है। कारण यह है कि प्रत्येक समूह अपने विचारों और जीवन पद्धति को सर्वोत्तम मानता है। इस प्रकार अभौतिक संस्कृति की प्रकृति पृथकता में रहने की प्रकृति होती है।

NOTES

भारतीय सांस्कृतिक परिपेक्ष्य में शिक्षा की भूमिका

भारतीय संस्कृति संसार की प्राचीनतम संस्कृति हैं। इस संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि समय और शक्ति की झंझावतों से गुजारने के बाद भी यह अपने मूल रूप को बनाए हुए हैं आज जब संसार की अनेक प्राचीनप संस्कृतियॉ अपना अस्तित्व खो बैठी है भारतीय संस्कृति अपने अस्तित्व को बनाए हुए है।

NOTES

भातरीय संस्कृति की मूल आधार अध्यात्म हैं, उसकी नीव पर ही इसकी सारी इमारत खड़ी है। यह धर्म सिद्वान्त और पुर्नजन्म को मानती है। यह चार वर्ण (बहम्ण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र) चार आश्रम (ब्रहाचर्य, गृहस्थ, वाणप्रस्थ और सन्यास) और चार पुरूषार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) की संस्कृति हैं। श्रद्वा, विश्वास और अतिथि सत्कार इसकी अन्य मूलभूत विशेषताएँ है। इसा पहला टकराव हुआ भातरीय मूल की द्रविड संस्कृति से। इसने उसकी पूजा–पाठ एवं भजन–कीर्तन की पद्वतियों को अपनाकर उसे अपने मे आत्मसात कर लिया। इसके बाद इसके विरोध में इस देश में जैन एवं बौद्व धर्म दर्शनों का विकास हुआ। इनके प्रभाव से इस देश में नई संस्कृतियॉ विकसित हुई एक जैन और दूसरी बौद्व।

भारत प्रारम्भ से ही विदेशियों के आकर्षण का केन्द्र रहा हे। यहॉ कई संस्कृतियों के लो आए परन्तु हमारी संस्कृति को प्रभावित नही कर सके। मुसलमान जाति ने यहॉ 500 वर्ष से अधिक राज्य भी किया और अपने शासनकाल में अपनी इस्लामी संस्कृति का खूब प्रचार एवं प्रसार भी किया, परन्तु भारतीय संस्कृति अपनी जगह अजेय रही है। इनके बाद इस देश में यूरोपीय जातियों का प्रवेश हुआ। सर्वप्रथम पूर्तगाली आए, उनके बाद डच, फ्रान्सीसी और अंग्रेज आए। अंगेजों ने तो यहॉ 200 वर्षो तक राज्य भी किया और अपने शासन काल में ईसाई धर्म एवं संस्कृति का खुब प्रचार प्रसार भी किया। हम उनकी भाषा सीखने लगे उनका साहित्य पढने लगे उनके जैसे कपडे पहनने लगे और उनके कुछ रीति रिवाजों को भी अपनाने लगे। और मजे की बात यह है कि उनकी परतन्त्रता से स्वतन्त्र होने के बाद भी हम उनकी नकल करने में गौरव का सम्मान करना छोडा है न अपने रीति–रिवाज छोडे हैं और न अपना धर्म छोडा है। हमारी भारतीय संस्कृति आज भी अजेय है।

जहॉ तक वर्तमान भारतीय संस्कृति और शिक्षा की बात है, हम संस्कृतिक एवं राजनैतिक दोनों दृष्टियों से उदारवादी नीति का पालन कर रहे हैं। और यह नीति शिक्षा के उद्देश्य एवं उवकी पाठ्चर्या के निर्धारण, शिक्षण विधियों के विधान, शिक्षक–शिक्षार्थियों के स्वरूप निर्धारण और विद्यालयों की गति–विधियों के निर्धारण, सभी में अपना रहे हैं यदि हमारे इस मार्ग से कोई बाधक तत्व है तो वे कुछ कट्टरपंथी लोग और वोटी की राजनीति करने वाले नेता। हमें इन दोनों से सावधान रहने की आवश्यकता है।

सांस्कृतिक परिवर्तन और शिक्षा :

NOTES

शिक्षा और संस्कृति के सम्बन्ध का स्पष्टीकरण करते हुए ब्रामेल्ड ने लिखा है– संस्कृति की सामग्री से ही शिक्षा का प्रत्यक्ष रूप से निर्माण होता है और यही सामग्री शिक्षा को न केवल स्वयं के उपकरण, वरन् उसके अस्तित्व का कारण भी प्रदान करती है।

इस कथन से स्पष्ट होता है कि संस्कृति के अभाव में शिक्षा निस्सार औश्र न्प्रियोजन है। यदि किसी समाज की शिक्षा में कोई विशेषता मिलती है तो उसका एकमात्र कारण उस समाज की संस्कृति है। वस्तुतः प्रत्येक समाज अपनी संस्कृति के अनुरूप ही शिक्षा की व्यवस्था करता है। शिक्षा अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए विविध प्रकार से संस्कृति की सेवा और सहायता करती है और इपने कार्यो को सम्मान करने के लिए उसका सहयोग प्राप्त करती है। अपने इस कथन की पृष्टि में हम निम्नांकित तथ्य प्रस्तुत कर रहे हैं–

1. संस्कृति के हस्तान्तरण में सहायता :

व्यक्ति समाज के सदस्य के रूप में संस्कृति को सीखता है और उसे अगली पीढ़ी को हस्तान्तरित करता है। इस कार्य में शिक्षा, संस्कृति को पूर्ण सहायता करती है। यह सत्य है कि व्यक्ति अज्ञात रूप से संस्कृति की अनेक बाते सीखता है पर यह भी सत्य है कि उसे अनेक बातों की शिक्षा अध्यापक के द्वारा दी जाती है। वस्तुतः अध्यापक के द्वारा शिक्षा को संस्कृति को हस्तान्तरित करने का कार्य सौंपा गया है। ओटावें का कथन है– शिक्षा का एक कार्य समाज के सांस्कृतिक मूल्यों और व्यवहार के प्रतिमानों को उसका तरूण और समर्थ सदस्यों को हस्तान्तरित करना है।

2. प्राकृतिक परिवेश से समायोजन :

मनुष्य जब कहीं किसी न किसी प्रकार के प्राकृतिक परिवेश में रहते हैं और इस परिवेश से समायोजन करने के बिना उनका जीवन नहीं चल सकता। परिवेश से समयोजन करने की प्रक्रिया में वे जो नये–नये आविष्कार करते हैं वे संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग हैं। प्राकृतिक परिवेश की भिन्नता के कारण भिन्न–भिन्न मानव समूहों संस्कृति का अन्तर हो जाता है। इसी आधार पर आदिम और विकसित संस्कृति में अन्तर किया जाना है। भारतवर्ष में विभिन्न जनजातियों के सदस्य अपने प्राकृतिक परिवेश से समायोजित करने के लिये भिन्न–भिन्न प्रकार से व्यवहार करते हैं और यह व्यवहार जनजाति द्वारा नई पीढ़ी को सिखाया जाता है।

NOTES

3. सामाजिक परिवेश से समायोजन :

संस्कृति में रीति–रिवाज, परम्परायें और चल व्यवहार प्रतिमान सम्मिलित होते हैं। इसमें हमारे विश्वास और विचार, निर्णय और मूल्य तथा सामाजिक संस्थायें निहित है। इन सबसे व्यक्ति को सामाजिक परिवेश से समायोजन करने में सहायता मिलती है। वास्तव में सामाजिक परिवेश में परिवर्तन के साथ–साथ इन सबमें भी परिर्वतन होत रहता है। संस्कृति से ही सामाजिक नियन्त्रण के प्रतिमान निश्चित होते है और न प्रतिमानों से व्यक्ति पर सामाजिक नियन्त्रण रहता है। अस्तु बालक को समूह की संस्कृति की शिक्षा देने से वह समूह की परम्पराओं, रीति–रिवाजों, मूल्यों और व्यवहार के प्रतिमानों से परिचित हो जाता है। इससे उसे सामाजिक परिवेश में समायोजन करने में आसानी होती है और उसका सामाजीकरण होता है।

4. व्यक्तित्व का विकास :

व्यक्तित्व मनुष्य के व्यवहार के प्रतिमानों से स्पष्ट होता है, मानव व्यवहार पर सब कहीं समूह की संस्कृति का महत्वपूर्ण प्रभाव होता है। मानव शास्त्रियों ने अनेक अध्ययनों से यह बात स्पष्ट कर दी है कि भिन्न–भिन्न समाजों में मूल व्यक्तित्व, प्रतिमान में भेद पाया जाता है। संस्कृति व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक, नैतिक, सौन्दर्यात्मक सभी पहलुओं को प्रभावित करती है। व्यक्तियों कें प्रयासों सें संस्कृति में महत्वपूर्ण परिवर्तन होते है, किन्तु फिर दूसरी ओर संस्कृति से ही सामान्य मनुष्यों के व्यवहार निर्धारित होते हैं।

5. संस्कृति और सभ्यता का संरक्षण और वृद्धि :

अन्य पशुओं की तुलना में मनुष्य की प्रगति का मुख्य कारण यह है कि मानव समाज में सभ्यता और संस्कृति के रूप में ज्ञान और अनुभव का संचय किया गया है। वर्तमानकाल में जन्म लेने वाला बालक हर दिशा में नये सिरे से नहीं सोचता। उसके विचार ने ढंग और काम करने के तरीके, रीति–रिवाजों, परम्पराओं औश्र सामाजिक संस्थाओं के रूप में संचित पूर्वजों के हजारों वर्षो के अनुभव से निर्देशित होते हैं। इसी लिए जिन देशों में संस्कृति जितनी ही अधिक प्रीचन होती है उनमें मानव जीवन में उतनी ही अधिक व्यवस्था उतना ही अधिक स्थायित्व दिखलाई पड़ता है। अस्तु सब कहीं यह आवश्यक माना जाता है कि सभ्यता और संस्कृति का संरक्षण किया जाये और नये विकास के द्वारा उसमें सतत् वृद्धि हो। यह कार्य व्यक्ति विशेषतया शिक्षा के माध्यम से अपने ज्ञान–चरित्र और व्यक्तित्व का विकास करके, साहित्यिक, कलात्मक और सामाजिक क्षेत्र में नाना प्रकार के योगदान देकर और सामाजिक विरासत की समृद्धि बढ़ाकर करता है।

6. सामुदायिक रूचियों और परम्पराओं को बनाये रखना :

सम्पूर्ण देश में राष्ट्रीय शिक्षा योजना, लागू करने का मुख्य प्रयोजन सभी नागरिकों में रूचियों और परम्पराओं की एकता बनाये रखना है। भारत के प्रसंग में यह बात और भी महत्वूर्ण है क्योंकि यहाँ अनेक प्रजातियों और धर्मो के लोग पाये जाते है। यह कार्य शिक्षा में विशेष पाठ्यक्रम की व्यवस्था तथा नाना प्रकार के पाठ्यक्रमेश्वर कार्यक्रमों में द्वारा सम्पन्न किया जाता है।

NOTES

संस्कृति के शैक्षिक निहितार्थ :

संस्कृति का जन्म समाज में ही होता है तथा शिक्षा समाज के लिए समाज द्वारा ही संगठित की जाती है। उपर्युक्त वाक्य द्वारा यह समझा जा सकता है कि शिक्षा व संस्कृति में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। किसी समाज की संस्कूति के अनुरूप शिक्षा की व्यवस्था का नियोजना किया जाता है। अर्थात् शिक्षा के स्वरूप का निर्धारण समाज की संस्कृति के आधार पर होता ह। उदाहरणार्थ यदि समाज की संस्कृति में धर्म एवं आध्यात्मिक भावना प्रधान होती है तो शिक्षा में शाश्वत मूल्यों की प्राप्ति एवं आध्यात्मिक उन्नयन पर बल दिया जाता है। इसी प्रकार यदि संस्कृति में भौतिकता की प्रधानता है तो शिक्षा द्वारा भौतिक उद्देश्यों की प्राप्ति को महत्व दिया जाता है। स्पष्ट है कि शिक्षा संस्कृति से प्रभावित होती है और इसके विभिन्न अंगों पर संस्कृति का प्रभाव अवश्य पड़ता है।

1. शिक्षा के उद्देश्य पर संस्कृति का प्रभाव (Influence of Culture on Aims of Education) :

प्रत्येक समाज की अपनी भिन्न–भिन्न प्रकार की संस्कृति (खान–पान आचार–विचार, रहन–सहन, धर्म, विश्वास, आवश्यकताएं) होती हैं। अतः शिक्षा के उद्देश्यों में भी स्वाभाविक रूप से भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। जिस समाज की संस्कृति मूलतः भौतिक होती हैं उसकी शिक्षा व्यवस्था में भी भौतिक उद्देश्यों की प्राप्ति पर बल दिया जाता है। किन्तु जिस समाज में अभौतिक संस्कृति की प्रधानता होती है उसमें शिक्षा द्वारा आध्यात्मिक उन्नयन, प्रेम, दया, सहानुभूति, परोपकार, सहयोग, नैतिकता जैसे गुणों के विकास पर बल दिया जाता है।

2. शिक्षा के पाठ्यक्रम पर संस्कृति प्रभाव (Influence of Cultrue on Curriculum) :

शिक्षा के पाठ्यक्रम को भी संस्कृति प्रभावित करती है। चूँकि पाठ्यक्रम शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति का साधन होता है। अतः पाठ्यक्रम का समाज की संस्कृति पर आधारित होना आवश्यक है। समाज की विचार–धारा, विश्वास, मूल्य आदि के आधार पर पाठ्यक्रम की

NOTES

रचना की जाती है। भौतिकता प्रधान संस्कृति वाले समाज में समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए विज्ञान, व्यापार, तकनीकी, अभियांत्रिकी, बैंकिंग, प्रबन्धन जैसे विषयों को पाठ्यक्रम में स्थान दिया जाता है। जबकि अभौतिक संस्कृति के पोषक समाज में लौकिक विषयों के अतिरिक्त नैतिक, धार्मिक, दार्शनिक, कलात्मक तथा साहित्यिक विषयों को अधिक प्रधानता दी जाती है।

3. शिक्षण विधि पर संस्कृति का प्रभाव (Influence of Culture on Teaching Method) :

समाज की संस्कृति के अनुसार शिक्षण विधियों में परिवर्तन होता रहता है। प्राचीन काल में शिक्षण विधि में अनुकरण और कंठष्थ करने पर बल दिया जाता था। छात्रो की योग्यता, क्षमता, रूचि पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। वर्तमान समय में शिक्षण विधि में बालकों की रूचियों पर विशेष ध्यान देते हुए सामुदायिक क्रियाओं को विशेष महत्व दिया जाता है। जिसमें बालक को स्वतः खोज कर सीखने तथा क्रिया द्वारा सीखने का अवसर प्राप्त हो।

4. अनुशासन पर संस्कृति का प्रभाव (Influence of Culture on Discipline) :

समाज के विचार, रहन–सहन, फैशन, मूल्य, भौतिक सभ्यता आदि का अनुशासन पर प्रभाव पड़ता है। विभिन्न संस्कृतियों के अन्तर्गत अनुशासन का स्वरूप भिन्न–भिन्न होता है।

5. शिक्षक व शिक्षार्थी पर संस्कृति का प्रभाव (Influence of Culture on Teacher-taught Relationship)

शिक्षक समाज का एक क्रियाशील सदस्य होता है। जिस पर समाज की संस्कृति का प्रभाव पड़ता है। वह शिक्षार्थी को अपने विचारों, शिक्षण विधियों के माध्यम से समाज की संस्कृति से अवगत कराता है। शिक्षार्थी शिक्षा ग्रहण करने के उपरान्त संस्कृति के परिवर्तन, संशोधन एवं वर्धन में अपनी भूमिका निभाता है।

6. विद्यालय पर संस्कृति का प्रभाव (Influnece of Culture of School) :

विद्यालय समाज का लघु रूप होता है। इस लिए समाज में व्यापक संस्कृति की झलक विद्यालयों में दिखाई पडती है। इस दृष्टि से विद्यालय समाज की संस्कृति के केन्द्र होते हैं। विद्यालय का समस्त वातावरण समाज की संस्कृति के अनुसार होता है। समाज के नये–नये रहन–सहन के ढंग, फैशन प्रवृत्तियॉ, रीति–रिवाज आदि का प्रभाव विद्यालय पर निश्चित रूप से पडता है।

उपरोक्त उदाहरण से भलीभॉति स्पष्ट हो जाता है कि समाज की संस्कृति वहॉ की शिक्षा को प्रभावित करती है। शिक्षा के उद्देश्य पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, विद्यालय, अध्यापक, छात्र आदि सब अपनी संस्कृति की ही उपज होते हैं। अतएव प्रत्येक देश की शिक्षा वहॉ की संस्कृति के अनुरूप होती है।

NOTES

एकीकृत मानवतावाद

(Intigrated Humanism)

मानव के किसी प्रकार के चिन्तन का मुख्य केन्द्र स्वयं मानव ही होता है। दार्शनिक चिन्तन में उसके वर्तमान के साथ–साथ उसके आदि और अन्त के विषय में भी विचार किया जाता है और उसके लिए तद्नुकूल अचारसंहिता बनाई जाती है। सामाजिक चिन्तन में उसके सामाजिक जीवन पर विचार किया जाता है और उसके सामाजिक जीवन को उच्च बनाये रखने के लिए व्यवहार मानदण्ड निश्चित किये जाते है। राजनैतिक चिन्तन में शासन तन्त्रों पर विचार किया जाता है। और उपयुक्ततम शासन व्यवस्था की खोज की जाती है। आर्थिक चिन्तन में विभिन्न अर्थ तन्त्रों पर विचार किया जाता है। और मनुष्यों के आर्थिक विकास की विधियों की खोज कर उनके जीवन स्तर को ऊॅचा उठाने का प्रयत्न किया जता है। मनोवैज्ञानिक चिन्तन में मनुष्य के व्यवहार के मूल आधारों एवं कारकों विचार किया जाता है। और उनके विकास को गति प्रदान की जाती है वैज्ञानिक चिन्तन में मनुष्य के लिए उपयोगिता की खोज की जाती है। और पदार्थो के प्रयोग से मनुष्य के जीवन को सुखमय बनाने का प्रयत्न किया जाता है। इस प्रकार मनुष्य के सभी प्रकार के चिन्तनों का केन्द्र विन्दु मानव ही होता है और सभी चिन्तन मानव के विकास एवं समृद्धि के साधनों की खोज की ओर प्रवृत्त होते है। और इस प्रकार सभी प्रकार के चिन्तन अपनी मूल प्रवृत्ति में मानवतावादी परन्तु आज हम मानवतावादी चिन्तन की बात कहते हैं। तो हमारा तात्पर्य आधुनिक युग की एक विशेष चिन्तन धारा से होता है। जो सम्पूर्ण विश्व को एक परिवार मानती है और मानव की सुख शान्ति के मार्ग की ओर प्रवृत्ति है।

वर्तमान मानवतावाद का प्रारम्भ अपने सभी रूप में 18वीं शताब्दी से हुआ। इस शताब्दी में यूरोप में तत्कालीन धर्म, राज्य तन्त्र, कुलीन तन्त्र और पूॅजीवाद इन सभी के विरूद्ध एक क्रान्तिकारी चिन्तन की शुरूआत हुई। 18वी शताब्दी के पूर्वाध में इग्लैण्ड के वालटेयर

NOTES

(Voltaire) ने बौद्धिक दमन के विरूद्ध आवाज उठाई उसने अज्ञान के विरूद्ध ज्ञान का नारा दिया उसकी चिन्तन धारा को विवेकवाद (Rationalism) की संज्ञा दी गई। 18वीं शताब्दी के उत्रार्द्ध में एक विशेष चिन्तक रूसो (Rousseau) ने तत्तकालीन निरंकुश तन्त्र और शोषण प्रधान धर्म एवं सामाजिक व्यवस्था को चुनौती थी। और इस कष्टमय जीवन से बचने के लिए "प्रकृति की ओर लौटो" का नारा दिया। उनकी विचारधारा को प्रकृतिवाद (Naturalism) की संज्ञा दी गई। यूतों इन दोनों चिन्तकों ने मानव वाद को किसी भी प्रकार के बन्धनों से मुक्त कर उनके जीवन को उच्च बनाने का प्रयत्न किया। परन्तु इन्होंने जो मार्ग चुने उससे मनुष्य का अधिक हित नहीं हुआ। उसी समय कुछ विचारक ऐसे हुए जिन्होंने संघर्ष एवं क्रान्ति के मार्ग के स्थान पर शान्ति के मार्ग को चुना। आधुनिक मानवतावाद की शुरूआत यहीं से मानी जाती है। इनकी चिन्तन धारा को मानवतावादी मानववाद (Humanistic Humanism) कहा जाता है।

भारतीय सन्दर्भ में मानवतावादी शिक्षा :

भारतीय सन्दर्भ में मानवतावादी शिक्षा को अग्रांकित ढंग से अधिक स्पष्ट किया जा सकता है।

जन शिक्षा :

मानवतावादियों के अनुसार शिक्षा का मूल अधिकार शिक्षा है। उनकी दृष्टि से किसी राज्य को अपने नागरिकों के लिए एक निश्चित स्तर तक की शिक्षा की अनिवार्य एवं निःशुल्क रूप से व्यवस्था करनी चाहिए। यह जन शिक्षा के प्रबल समर्थक हैं।

स्त्री शिक्षा :

मानवतावादी मनुष्य मनुष्य में किसी भी आधार पर भेद नहीं करते है। इनके अनुसार स्त्रियों को भी पुरूषों की भॉति किसी भी प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार होना चाहिए और राज्य को इस अधिकार को प्राप्त करने में उनकी सहायता करनी चाहिए।

व्यावसायिक शिक्षा :

मानवतावादी मनुष्य मात्र को भौतिक दृष्टि से सम्पन्न एवं सुखी देखना चाहते हैं और इसके लिए सर्वप्रथम उनमें मानवीय गुणों का विकास करने पर बल देते हैं। और उसके बाद उन्हें किसी व्यवसाय में दक्ष कर रोजी रोटी कमाने योग्य बनाना चाहते हैं।

धार्मिक शिक्षा :

मानवतावादी धर्म के नाम पर होने वाले शोषण के उग्र विरोधी हैं। यह मनुष्यों को ईश्वर सम्बन्धी धर्म दर्शन के स्थान पर मानव सम्बन्धी धर्म दर्शन की शिक्षा देने के पक्ष में हैं।

NOTES

सामाजिक परिवर्तन के सन्दर्भ में मानवतावाद :

मानवतावादी समाज से आशय भारतीय समाज में समय सापेक्ष उत्पन्न नवीन मान्यताओं, नवाचारों तथा जीवनशैली की पृष्ठ भूमि को अपना कर तद्सम्बन्धी कार्यव्यवहार करने से है। वर्तमान में भारतीय समाज एक नवोन्मेषी प्रवृत्तियों को आत्मसात कर रहा है। प्राचीन भारतीय मूल्य, आदर्श, परम्परा को नये कलेवर में ढाल कर भारतीय समाज की आधुनिकता की ओर बढ रहा है।

15 अगस्त 1947 को भारत को ब्रिटिश दास्ता से मुक्ति दिलाने के बाद भारत को लोकतान्त्रिक देश स्वीकार करते हुए एक संविधान का प्रणयन 2 वर्ष 11 माह 18 दिन के अथक परिश्रम के बाद किया गया। इसे 26 जनवरी 1950 को देश में लागू किया गया। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में भारतीय समाज का रूप निम्नवत प्रस्तावित है–

1. भारत एक लोकतान्त्रिक राज्य है।
2. यह स्वतन्त्रता, समानता, भ्रातृत्व, न्याय, समाजवाद और धर्म निरपेक्षता का हिमायती है।
3. संविधान की धारा 15(1) में प्राविधान हैं कि ''राज्य किसी नागरिक के प्रति केवल धर्म, कुल या वंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान या इनमें से किसी भी एक के आधार पर अन्तर या भेदभाव नहीं करेगा।
4. धारा 17 में वर्णित हैं कि ''अस्पृश्यता सामाप्त की जाती है। और इसका किसी भी रूप में व्यवहार निषिद्ध है।

धारा 38 में कहा गया है कि ''राज्य जनसाधारण के कल्याण को एक सामाजिक व्यवस्था, जिसमें न्याय, सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्राणित करेगा, को जहॉ तक सम्भव हो सकेगा, प्राप्त करके सुरक्षित करके, उन्नति का प्रयत्न करेगा।

इसके अतिरिक्त कानून के द्वारा अर्न्तजातीय विवाह की बैधता की स्वीकृति, बहु विवाह की समाप्ति, अनुसूचित जाति एवं जनजाति को मन्दिरों में प्रवेश की अनुमति, हिन्दू उत्राधिकार

नियम के द्वारा समाज को नई दिशा तथा लोकतान्त्रिक मान्यताओं पर आधारित करने का प्रयास किया गया है।

NOTES

धारा 39 में वर्णित है कि – "राज्य सभी नागरिकों को समान्य रूप से जीविका के पर्यापत साधन प्रदान करेगा।"

धारा 40 में वर्णित है कि – "राज्य ग्राम पंचायतों का गठन करेगा। तथा उन्हें ऐसी शक्तियॉ प्रदान करेगा जो उन्हें स्वयत्त शासन की ईकाईयो के रूप में कार्य करने योग्य बना सके।"

धारा 41 में वर्णित है कि – "राज्य अपनी सामर्थ के अनुसार यथाशक्ति काम पाने, शिक्षा पाने, बेकारी तथा बुढापा, बीमारी और अंगहानि तथा अन्य आभावों की दशा में सार्वजनिक सहायता पाने के अधिकार को प्राप्त कराने का कार्यसाधक उपबन्ध करेगा।"

धारा 43 में वर्णित है कि – "राज्य ग्रामों में कुटीर उद्योगों को व्यक्तिगत तथा सहकारी आधार पर बढाने का प्रयास करेगा।"

धारा 45 में वर्णित है कि – "राज्य सभी 14 वर्ष आयु वर्ग के बालक बालिकाओं को निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा देने के लिए उपबन्ध करने का प्रयास करेंगा।"

धारा 46 में वर्णित है कि – "राज्य जनता के निर्बल वर्गो विशेषताया एस0सी0/एस0टी0 जातियों के शिक्षा तथा अर्थ सम्बन्धी हितों की उन्नति करेगा। तथा उनकी अन्याय तथा सब प्रकार के शोषण से उनका संरक्षण करेगा।"

भारतीय संविधान के अनेकों अनुच्छेदों और धाराओ के अन्तर्गत समाज का सुधार, परिस्कार तथा समतावादी परिवेश का सृजन करने का प्रयास किया गया। किन्तु फिर भी भारतीय समाज अनेको कुरीतियों से ग्रसित है।"

भारतीय सन्दर्भ में एकीकृत मानवतावाद के शैक्षिक निहितार्थः

मानवतावाद् मनुष्य को संसार का केन्द्र मानता है। और सम्पूर्ण मानव जाति को एक मानता है। यही कारण है कि यह सम्पूर्ण मानव जाति के हित साधनों की खोज की ओर प्रवृत्ति है। यह न जाति विरोधी है और न ही धर्म विरोधी, न समाज विरोधी और न राज्य विरोधी है यह तो उनकी उस संर्कीणता का विरोधी है जिसने मानव समाज को मानव से अलग कर दिया है। और शान्ति के स्थान पर उसे संघर्ष की आग में झोंक दिया है। यह विज्ञान का भी विरोधी नहीं यह तो विज्ञान द्वारा उन संहारक अस्त्र–शस्त्रों के निर्माण का विरोधी है जिसने

सम्पूर्ण मानव जाति के अस्तित्व के लिए खतरा पैदा कर दिया है। यह मनुष्यों को इन सब संकिर्णताओं एवं खतरों से निकाल कर उन्हें एक दूसरे के जीने का सन्देश देता है। इसी लिए इसे मानवतावादी दर्शन कहा जाता है। इस युग में मानवतावाद में शिक्षा के स्वरूप को निश्चित करने में बडी अहम भूमिका का निर्वाह किया है। इसके कुछ सुझाव बडे ही व्यवहारिक हैं।

NOTES

मानवतावाद शिक्षा को उसके व्यापक रूप में स्वीकार करता है और यह मानता है कि शिक्षा की प्रक्रिया सब जगह और हर समय चलती है। अतः मनुष्यों को बच्चों के सामने बडी सर्तकता के साथ विचार व्यक्त करने चाहिए और व्यवहार करना चाहिए, तभी उन्हें सच्ची मानवता का पाठ पढाया सिखाया जा सकता है।

मानवतावाद शिक्षा द्वारा मनुष्य को एक अच्छा मनुष्य बनाने पर बल देता है। और इसके लिए शिक्षा के उद्देश्य निशचित करता है। इन उद्देश्यो में मुख्य उद्देश्य है– तर्कशक्ति का विकास, मानवीय मूल्यों का विकास और सृजनात्म शक्ति का विकास परन्तु मनुष्य के आध्यात्मिक विकास के बिना उनमें मानवीय मूल्यों का विकास कैसे किया जा सकता है। इस सन्दर्भ में यही कहा जा सकता है कि मानवतावादी बिना नींव के इमारत खडी करना चांहते हैं।

शिक्षा की पाठ्चर्या में शास्त्रीय मानवतावादी मानविकी विषयों को स्थान देने की बात करते हैं। और वैज्ञानिक मानवतावादी मानविकी एवं वैज्ञानिक विषयों को स्थान देते हैं। परन्तु धर्म को यह दोनो ही अलग करने के पक्ष में है। अब संसार बहुत आगे बढ चुका है, उस सबकी जानकारी के अभाव में अब मानव आस्तित्व की बात नहीं सोची जा सकती है।

मानवतावादी तर्क को ज्ञान का आधार मानते हैं यह इन्द्रियानुभूत ज्ञान को भी तर्क की कसौटी पर कस कर ग्रहण करने पर बल देते हैं। कुछ मानवतावादी विज्ञान का विरोध अवश्य करते हैं। परन्तु शिक्षण के सन्दर्भ में वे वैज्ञानिक विधि का ही समर्थन करते हैं, स्वयं करके स्वयं के अनुभव से सीखने पर बल देते हैं। सीखने सिखाने के सम्बन्ध में इन्होंने जिन सूत्रों– स्वतन्त्रता जीवन से सम्बन्ध एवं वैयक्तिक विभिन्नता आदि पर बल दिया है वे आज सभी को मान्य हैं।

अनुशासन के सम्बन्ध में भी इन्होंने अपने पूर्व विचारकों का ही समर्थन किया है बस एक उसमें नया शब्द मानवीय और जोड दिया है। शिक्षक और शिक्षार्थियों को इन्होंने मानवीय सम्बन्ध स्थापित करने का सन्देश अवश्य दिया है। किन्तु उनके लिए कोई निशचित

अचारसंहिता निर्धारित नहीं की है। यह तो पूर्व निश्चित आचारसंहिता में विश्वास ही नहीं करते हैं।

NOTES

विद्यालयों में जीवन की वास्तविक स्थिति विकसित करने की बात करते हैं। तथा जन शिक्षा के नारे को बुलन्द करने में इनका बडा योगदान रहा है। और स्त्री पुरूषों को शिक्षा के समान अधिकार एवं समान अवसर प्रदान करने की आवाज को भी इन्होंने गति प्रदान की है।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि मानवतावादियों ने एक नई वैचारिक क्रान्ति को जन्म तो दिया है किन्तु लोगों को मानव विनाशकारी तथ्यों से परिचित भी कराया है। किन्तु दुनिया के लोग वहीं के वहीं हैं, सभी स्वार्थपरता और संर्किणता से घिरे है। शिक्षा दर्शन के रूप में भी इनकी कोई देन नई नहीं है, पूर्व निश्चित का विरोध करने वाले इन मानवतावादियों ने पूर्व निश्चित ज्ञान, विज्ञान एवं मूल्यों की शिक्षा पर ही बल दिया है। बिना इसके मानव विकास सम्भव ही नहीं हो सकता है। हमारी अपनी दृष्टिकोण से सच्ची मानवता के विकास के लिए सच्चे धर्म दर्शन की शिक्षा अत्यावश्यक है।

यूनिट – 4

शिक्षा में सामाजिक सिद्धान्त

NOTES

Social Principles in Education

वर्तमान में हमारे देश में लोकतन्त्र शासन प्रणाली हैं लोकतन्त्र व्यष्टि का आदर करता है, वह क्षेत्र, जाति, धर्म व लिंग आदि किसी भी आधार पर भेदभाव नहीं करता। यहीं कारण है कि हमारी वर्तमान भारतीय सरकार ने देश के सभी बच्चों, युवकों एवं प्रौढ़ों को बिना किसी आधार पर भेद–भाव किए, शिक्षा के समान अधिकार दिये हैं। समाज अधिकार के साथ समान अवसर प्रदान करने का भी प्रयास चल रहा है। समान अवसर प्रदान करने की दिशा में अनुसूचित जनजाति, अनुसूचित जाति और पिछडी जाति के बच्चों तथा शारीरिक दृष्टि से विकलांग एवं मानसिक दृष्टि से पिछडे बच्चों की शिक्षा के लिए विशेष प्रबन्ध किये जा रहे हैं। साथ ही स्त्री शिक्षा को बढावा देने के लिए बच्चियों की शिक्षा के लिए भी विशेष प्रयत्न किये जा रहे है। दूर–दराज में रहने वाले और खाना–बदोशों के बच्चों की शिक्षा की ओर भी सरकार का ध्यान गया है। आवश्यकतानुसार स्कूल कॉलिज खोले जा रहे है, छात्रावास सुवधिाएं बढाई जा रही है और छात्रवृत्तियॉ दी जा रह है। आरक्षण की व्यवस्था इस दिशा में एक और बड़ा कदम है, यह बात दूसरी है कि उच्च शिक्षा के विशिष्ट पाठ्यक्रमों में आरक्षण की व्यवस्था से बहुत हानि हो रही है।

वर्तमान में हमारी सरकार अकेले इस कार्य को नहीं कर पा रही है। इस क्षेत्र में जन–सहयोग लिया जा रहा है। और जन भी इस कार्य में पीछे नहीं है। पर जन–सहयोग और शिक्षा का निजीकरण करना दो अलग बाते है। शिक्षा के निजीकरण से शिक्षा के क्षेत्र में शोषण को बढावा मिला है। सरकार को अपने शैक्षिक उत्तरदायित्व को समझना चाहिए और उसका ईमानदारी से निर्वाह करना चाहिए।

सामान्य, अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था :

शैक्षिक अवसरों की समानता की प्राप्ति का सबसे पहला कदम एक निश्चित स्तर तक की शिक्षा को अनिवार्य एवं निःशुल्क करना है। अभी हमारे देश में कक्षा 1 से कक्षा 8 तक की शिक्षा को सामान्य, अनिवार्य एवं निःशुल्क करने का प्रयत्न किया जा रहा है, भविष्य में प्रथम 10 वर्षीय शिक्षा को अनिवार्य एवं निःशुल्क करना है। इससे देश के सभी बच्चों की सुप्त शक्तियों को जगाया जा सकेगा और फिर उनको उनकी वृद्धि और योग्यता के आधार पर आगे

की शिक्षा सुलभ कराई जा सकेगी। यह कार्य जितनी शीघ्र किया जा सके सरकार को उसके लिए सच्चे मन से प्रयत्न करना चाहिए।

NOTES

उच्च कोटि के मानव संसाधन का निर्माण :

उच्च कोटि के मानव संसाधन के निर्माण का एकमात्र साधन है उत्तर श्रेणी की शिक्षा और इसकी बात हम प्रारम्भ में ही कर चुके हैं। यहॉ हम दो बातों पर बल देना चाहेंगे– पहली यह कि उच्च स्तर पर विज्ञान, तकनीकी और प्रशासन की शिक्षा के स्तर को उठाया जाए, उसे विकसित देशों के स्तर का बनाय जाए और दूसरी यह कि प्रतिभा पलायन पर अंकुश लगाया जाए। प्रतिभा पलायन को उसी स्थिति में रोका जा सता है जब देश में ही उन्हें अच्छे अवसर प्रदान किये जाएं और यह तभी सम्भव है जब अति प्रतिभाशाली व्यक्तियों के लिए विशेष वेतनमान निश्चित किये जाए। इस प्रकार उच्च कोटि की उच्च शिक्षा की व्यवस्था करने और प्रति पलायन को रोकने, दोनों के लिए अर्थ की आवश्यकता है। सरकार को अब इसके महत्व को समझना चाहिए।

राष्ट्र के चरित्र का निर्माण :

हमारे देश में आधुनिकीकरण, आर्थिक विकास और जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के मार्ग में एक बडी बाधा कर्तव्यनिष्ठा और ईमानदारी की कमी की है। हमारे भू0पू0 युवा प्रधानमंत्री श्री राजीव गॉधी ने खुलेआम स्वीकार किया था कि विकास कार्यो के लिए जो धनराशि आवंटित की जाती है उसका केवल 15 प्रतिशत ही विकास कार्यो में लगता है। प्रश्न उठता है, शेष 85 प्रतिशत कहॉ जाता है? उत्तर साफ है, तत्तसम्बन्धी व्यक्तियों की तिजोरियों में। कर्तव्यनिष्ठा और ईमानदारी की कमी को दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्तियों के चरित्र का निर्माण किया जाए, राष्ट्र के चरित्र का निर्माण किया जाए। यह कार्य कथनी द्वारा नहीं, करनी द्वारा किया जा सकता है। झूठ बोलने का चाहे जितना उपदेश दें, इससे कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। आचरण की शिक्षा आचरण से दी जा सकती है और यह कार्य ऊपर से शुरू होना चाहिए।

समाज के मॉगों की पूर्ति :

शिक्षा और सामाजिक गतिशीलता के सन्दर्भ में यह बात भी आवश्यक है कि शिक्षा समाज की मॉगों की पूर्ति किस सीमा तक करती है। यदि समाज में मॉग हो इंजीनियरों की और शिक्षा के द्वारा तैयार किये जाएं डाक्टर, वकील और शिक्षक तो बेकारी बढ़ने के अतिरिक्त

और कोई चीज हाथ नहीं लगेगी। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी यदि मनुष्य के आर्थिक स्तर में सुधार नहीं होता तो सामाजिक गतिशीलता नहीं देखी जाती।

शैक्षिक अवसरों की समानता :

NOTES

सामाजिक गतिशीलता को बढाने के लिए सबसे बडी आवश्यकता है शैक्षिक अवसरों की समानता। जब तक समाज में सभी बच्चों को, जाति, धर्म, स्थान आदि किसी भी आधार पर भेद किये बिना, उनकी योग्यतानुसार विकास करने के अवसर प्रदान नहीं किये जाते तब तक सामाजिक गतिशीलता को सर्वव्यापक नहीं बनाया जा सकता।

हमारी अपनी सम्मति :

भारत में शैक्षिक अवसरों की समानता के समबन्ध में सरकार ने निर्णय लिए हैं घोषणायें की है और कार्य किये है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में वे प्रमुख प्रस्तावों के आधार पर एक कार्य योजना विकसित की गई है और आवश्यक धनराशि की कुछ व्यवस्था भी की गई। हमारी अपनी दृष्टि से शैक्षिक अवसरों की समानता का आधार राजनैतिक न होकर शैक्षिक होना चाहिए और काल्पनिक न होकर वास्तविक होना चाहिए और इस आधार पर निम्नलिखित व्यवस्थाओं द्वारा शैक्षिक अवसरों में वृद्धि –

1. सामान्य, अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था :

शैक्षिक योग्यता की समानता की प्राप्ति का सबसे पहला कदम एक निश्चित स्तर तक की शिक्षा को अनिवार्य एवं निःशुल्क करना है। अभी हमारे देश में कक्षा 1 से कक्षा 8 तक की शिक्षा को सामान्य, अनिवार्य एवं निःशुल्क करना है। इससे देश के सीभ बच्चों की सुप्त शक्तियों को जगाया जा सकेगा और फिर उनको उनकी बुद्धि और योग्यता के आधार पर आगे की शिक्षा सुलभ कराई जा सकेगी। यह कार्य जितनी शीघ्र किया जा सके सरकार को उसके लिए सच्चे मन से प्रयत्न करना चाहिए।

2. आवश्यकतानुसार शिक्षण संस्थाओं की व्यवस्था :

शैक्षिक अवसरों की समानता का प्रथम पहलू है देश के सभी बच्चों एवं युवकों को बिना किसी भेदभाव के किसी भी स्तर की किसी भी प्रकार की शिक्षा समान रूप से सुलभ कराना। यह तभी सम्भव है जब देश के प्रत्येक क्षेत्र में वहॉ की जनसंख्या और मॉग के आधार पर भिन्न–भिन्न स्तर के स्कूल एवं कॉलेजों की स्थापना की जाए। उसी स्थिति में सभी बच्चे और युवक स्कूल और कॉलेजों में प्रवेश पा सकेंगे।

3. शिक्षण संस्थाओं के स्तर में समानता :

NOTES

आज हमारे देश में किसी भी स्तर की शिक्षण संस्थाओं के स्तर में भारत असमानता है। इस असमानता को समाप्त करने के लिए किसी भी स्तर की शिक्षण संस्थाओं के लिए न्यूनतमक साधन (भवन, फर्नीचर, प्रयोगशाला, खेल के मैदान और शिक्षक आदि) निश्चित किऐ जाएं और साथ ही उनके लिए न्यूनतम अधिगम स्तर (Minimum Level of Learining) निश्चित किये जायें और उनका कठोरता के साथ पालन किया जाये। इस क्षेत्र में सरकार को शिक्षण संस्थाओं को भवन, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, शिक्षण सामग्री और खेल सामग्री आदि के लिए आर्थिक सहायता देनी चाहिए, समय–समय पर विद्यालयों का निरीक्षण कराना चाहिए। और न्यूनतम उपलब्धि न कर पाने वाली शिक्षण संस्थाओं को प्रधानाचार्य एवं शिक्षकों आदि को सेवामुक्त कर देना चाहिए। अब समय आ गया है जब अधिकार के साथ कर्तव्य अवश्य जोड़ा जाये।

4. लडकियों की शिक्षा की समुचित व्यवस्था :

हमारे देश में लडकियों की शिक्षा के सम्बन्ध में पहली समस्या तो यह है कि अधिकतर माता–पिता अपनी बच्चियों की शिक्षा के प्रति सचेत नहीं है। और दूसरी समस्या यह है कि लडकियों की शिक्षा के लिए पर्यापत शिक्षण संस्थायें नहीं है। पहली समस्या के समाधान के लिए हम अनिवार्य एवं निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा की बात प्रारम्भ में ही कह चुके हैं। दूसरी समस्या के समाधान हेतु लडकियों के लिए और अधिक उच्च प्राथमिक एवं माध्यमिक स्कूलों की स्थापना की जाये और जहॉ आवश्यकता हो वहॉं महिला कॉलेज स्थापित किये जायें। साथ ही सहशिक्षा (Co-education) को प्रोत्साहन दिया जाये, जहॉं आवश्यक हो वहॉ महिला छात्रावासों की व्यवस्था की जाए। निर्धन वर्ग की छात्राओं को शुलक मुक्त किया जाये और उन्हें आर्थिक सहायता दी जाये।

5. पिछडी अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और मुस्लिम जाति के निर्धन वर्ग के बच्चों की शिक्षा की उचित व्यवस्था :

हमारे देश में एक बहुत बड़ा वर्ग ऐसा है जो पिछडा है और निर्धन है। पिछडी जति, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और मुसलमान जाति के तो अधिकरत लोग पिछडे और निर्धन है। इनके बच्चों की शिक्षा, के सम्बन्ध में दो बड़ी समस्यायें है। पहली यह कि ये स्वयं शिक्षा के प्रति सचेत नहीं है। और दूसरी यह कि इनके पास शिक्षा के लिए न समय है न

साधन। इन्हें शिक्षा के समान अवसर प्रदान करने के लिए यह आवश्यक है कि इन्हें शिक्षा के प्रति सचेत किया जाये, अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की अनिवार्यता को कानूनी जामा पहनाया जाये, इनके बच्चों के लिए विशेष शिक्षण संस्थायें खोली जायें और इन्हें आर्थिक सहायता दी जाये।

NOTES

6. मन्दबुद्धि और विकलांक बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था :

शिक्षा मानव का मूल अधिकार है, अतः देश के किसी भी व्यक्ति को इससे वंचित न रखा जायें। हम धनी, निर्धन, नगरीय, ग्रामीण और सभी जाति एवं धर्म के बच्चों की शिक्षा की समान व्यवस्था की बात कर चुके हैं। यहॉ हम मन्द बुद्धि और विकलांग बच्चों, विशेषकर गूंगे, बहरे, और अन्धों की शिक्षा की बात कह रहे हैं। इनके लिए अलग से स्कूल कॉलेजों की व्यवस्था की जाये और इनमें विशेष प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षकों की नियुक्ति की जाये। इन छात्रों में जो छात्र निर्धन हों उन्हें आर्थिक सहायता दी जाये।

7. दूर–दराज और बीहड़ स्थानों में रहने वालों के लिए शिक्षा की व्यवस्था :

ऐसे बच्चों के लिए उन्हीं स्थानों पर स्कूल खोले जायें और यदि ऐसा सम्भव न हो तो क्षेत्र विशेष के केन्द्रीय स्थानों पर आवासीय स्कूल खोले जायें। अधिक दूरी से आने वालों को सवारी सुवधिा भी प्रदान की जा सकती है।

8. सामान्य शिक्षा सबके लिए और उच्च एवं विशिष्ट शिक्षा योग्यतानुसार :

शैक्षिक अवसरों की समानता का तकाजा है कि सामन्य शिक्षा बिना किसी भेदभाव के सबकों अनिवार्य रूप से सुलभ कराई जाये और उच्च एवं विशिष्ट शिक्षा योग्यता के आधार पर सुलंभ कराई, जाये न कि आर्थिक अथवा राजनैतिक दबाव के आधार पर। हम तो इस स्तर पर क्षेत्र, जाति, धर्म, लिंग के आधार पर प्रवेश को शैक्षिक अवरों की समानता के प्रतिकूल मानते है।

शिक्षा की आर्थिक उपादेयता

NOTES

(Economic Relevance to Education)

जिस प्रकार राजनैतिक विचारधारायें तथा राजनैतिक व्यवस्थायें शिक्षा प्रणाली को प्रभावित करती है। उसी प्रकार आर्थिक विचारधारायें तथा आर्थिक एवं शैक्षिक प्रणालियॉ परस्पर एक दूसरे को न्यूनाधिक प्रभावित करती है।

विकास गुणात्मक परिवर्तनों का विवोधक है आर्थिक और अनार्थिक संरचनाओं में परिवर्तन अथवा उनकी सर्जना विकास का निदर्शन करती है। विकास शब्द की अर्थ परिधि में वृद्धि और परिवर्तन दोनों शब्दों के निहितार्थ समाहित है। आर्थिक विकास प्रचलित अर्थव्यवस्था की प्रकृति में परिवर्तन का विबोधन करता है दूसरें शब्दों में यह जीवन स्तर के वृद्धि अथवा उच्चता को दर्शाता है।

आर्थिक विकास जीवन संसाधनों की समृंद्धि मात्र पर ही निर्भर नहीं होता अपितु यह शिक्षित जनसमूह की भी अपेक्षा करता है। अपनी व्यवस्थित निर्देशन और प्रशिक्षण प्रक्रिया द्वारा शिक्षा लोगों को मानसिक नैतिक, भौतिक, सामाजिक शक्तियों के अभिविकास को लक्ष्यगत करती है जिससे कि वे अपनी दिन प्रंतिदिन की नाना समस्याओं का समाधान खोज सके इस प्रकार शिक्षा विकास और मानवीय प्रगति का साधन बनती है।

शिक्षा : उत्पादक क्रिया के रूप में :

आज शिक्षा को उत्पादक क्रिया माना जाने लगा है। यह उत्पादन बढ़ाती है पर स्वयं उत्पादन नहीं करती। सुशिक्षित युवक युवती यह उत्पादन वृद्धि करते हैं। शिक्षा ऐसे सुयोग्य नागरिकों का निर्माण करती है। शिक्षा ही कुशल मानव शक्ति का सृजन करती है। यही मानकर विगत चार पॉच दशकों में मानव–शिक्षा पर बढ़ा चढ़ाकर पूंजी निवेश किया जाने लगा है सरकारी, गैरसरकारी विद्यालयों में अध्यापकों के वेतन भत्तो, भवन निर्माण, प्रयोगशाला सज्जा, फर्नीचर निर्माण, छात्रवृत्ति, पुस्तक सहायता आदि मदों पर निरन्तर अधिक धनराशि व्यय की जा रही है।

शिक्षा : निवेश के रूप में :

शिक्षा पर जितनी अधिक पूंजी लगाई जायेगी देश उतना ही समृद्ध होगा शिक्षा पर लगाई पूंजी से राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है। देश में आर्थिक विकास के साधनों को

अधिकाधिक सुलभ बनाकर एवं राष्ट्र के नागरिकों को अधिकाधिक शिक्षित, प्रशिक्षित और कुशल बनाकर आय में अभिवृद्धि की जा सकती है। इसी प्रकार परिवर्तनशली, औद्योगिक समाज की आवश्यकताओं की पूरिपूर्ति द्वारा उसकी नयी वांछित कुशलताओं को बढ़ाकर तथा नये–नये अनुसंधानों की सहायता से राष्ट्रीय उत्पादकता को बढ़ाकर भी राष्ट्रीय आय की बढ़ोत्तरी की जा सकती है।

NOTES

शिक्षा–व्यक्तियों के दृष्टिकोण में व्यापकता लाती है, उन्हें नये–नये विचारों, कौशलों एवं निपुणताओं को ग्रहण करने के लिए तैयार करती है, जिससे उनकी उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है। इस प्रकार शिक्षा पर बढ़ाया गया निवेश राष्ट्रीय उत्पादकता में निश्चय ही वृद्धि लाता है। यही मानकर आज शिक्षा को अन्य उद्योगों की भॉति निवेश समझा जा रहा है। एक अन्य दृष्टि से कुछ शिक्षा अर्थशास्त्रियों ने शिक्षा को उपभोग भी माना है।

शिक्षा के बेहतर प्रतिफल :

शिक्षा पर अधिक पूँजी लगाने के परिणाम बेहतर सामने आये है। शिक्षित व्यक्ति अधिक धन द्रव्य कमाता है। शिक्षित व्यक्ति की आय उसका व्यक्तिगत प्रतिफल होती है। व्यक्ति की ऊँची शिक्षा का प्रतिफल प्रायः संस्था और समाज को भी मिलता है। शिक्षित व्यक्तियों को अपनी बढ़ी आमदनी से संतोष्ज्ञ भी अधिक मिलता है। उसे अधिक सांस्कृतिक संतुष्टि भी मिलती है। शिक्षा के ये बढ़े लाभ प्रायः तात्कालिक कम होते है पर गुणात्मक अवश्य होते है।

शिक्षा द्वारा अर्थ–व्यवस्थाओं में गुणात्मक–परिणात्मक बढोत्तरी :

शिक्षा विशेषकर सतत् शिक्ष अर्थव्यवस्थाओं में गुणात्मक और परिणात्मक बढ़ोत्तरी लाती है। कृषि प्रधान तकनीकी ज्ञान, उद्यानिकी की जानकारी, कीट विज्ञान परिचय, उर्वरकों, के प्रभाव प्रयोग की अद्यतन जानकारी, फल और दुग्ध–व्यवस्थापरक व्यापक नये ज्ञान, मत्स्य–कुक्कुट, मधुमक्खी पालन प्रविधि ज्ञान, पशुधन–विकास परिज्ञान आदि का अतीव महत्व है। कृषि विज्ञान की आधुनिक जानकारी और कृषि शोधों के व्यवहारिक उपयोग से निश्चय ही अच्छे परिणाम सामने आयें है और कृषि उत्पादकता बढी है। जिससे हमारा महत्वपूर्ण आर्थिक विकास सधा है। अतएव प्रोन्नत कृषि प्रौद्योगिकी को किसानों द्वारा अपनाये जाने की तीव्र आवश्यकता है। इधर के वर्षो में चर्चागत, 'हरित क्रान्ति' की अपेक्षायें भी यही है। सस्य विज्ञान, पादप प्रधान विज्ञान, व्यावहारिक अर्थशास्त्र आदि विषयों के अन्तर्गत नये–नये शोधों के निष्कर्ष हरित क्रान्ति लाने में सहायक है। इस प्रकार सिद्ध है कि कृषि विकास से आर्थिक विकास होगा ही।

NOTES

वार्णिज्य प्रधान अर्थव्यवस्था में अधिकांशतः लोग व्यापार करते देखे जाते है। यह व्यवस्था प्रायः बचत उन्मुखी होती है, और उत्पादन बढाने के लक्ष्य से बंधी होती है। उत्पादन बढ़ने से देश में आर्थिक संसाधन बढ़ते है। और इस प्रकार आर्थिक समृद्धि आती है। व्यापारकर्मियों की भी योग्यता एवं क्षमता वृद्धि आवश्यक है। शिक्षा यह भूमिका अदा करती है। व्यापार, शिक्षा, वाणिज्य शिक्षा इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है। वार्णिज्य शिक्षा साहसी उद्यमियों, व्यवसायकर्मियों, व्यापार प्रबन्धकों एवं व्यापार व्यवसायकर्मियों, व्यापार सलाहकारों को उत्पन्न करती है जो राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में होड़ करने में सफल सिद्ध होते है। व्यापार शिक्षा की परिधि में वार्णिज्य प्रबन्धन और व्यावयायिक शिक्षा की अन्य अनेक सम्बन्धित शाखायें आती है। उन सभी कोटि की शिक्षायें तीव्र गति से बढ़ते व्यापारिक वातावरण से मुकाबले के लिए कार्मिकों को तैयार करने में सहायक सिद्ध होती है। ये सुयोग्य व्यापार कर्मी ही देश की प्रभूत व्यापारिक प्रगति करते हैं और देश का उत्पादन बढाते है। उत्पादन संसाधन वृद्धि से सहज ही देश का आर्थिक विकास सधता है।

आर्थिक विकास में विश्वविद्यालयों की महतीय भूमिका :

किसी भी राष्ट्र के उल्लेखनीय आर्थिक विकास में विश्वविद्यालय संस्थानों की बड़ी भूमिका होती है। विश्वविद्यालय ही अपने विशिष्ट ज्ञान विज्ञान से सामाजिक परिवर्तन लाते है और श्रेष्ठ औद्योगिक विकास करते हैं। मानव संसाधन विकास विश्वविद्यालय व्यवस्था का प्रधान कार्य होता है। मानव संसााधन विकास कार्यक्रमों की गुणवत्ता उस देश के आर्थिक विकास का कारक बनती है। स्पष्टतः उच्च शिक्षा और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था परस्पर एक दूसरे से जुड़े है। अर्थव्यवस्था जहॉ एक उच्च शिक्षा के उन्नयन हेतु आवश्यक संसाधन जुटाती है वही दूसरी ओर उच्च शिक्षा विशिष्ट व्यावसायिक योग्यता सम्पन्न जन शक्ति का निर्माण और उत्पादन करती है जो बढ़ी उत्पादकता की सहायता से राष्ट्रीय जीवन स्तर को ऊॅचा करती है तथा स्थायी सामाजिक आर्थिक विकास के लिए आवश्यक ढॉचा तैयार करती है और समुचित नीति निर्धारण करती है।

शिक्षा का समाज पर प्रभाव :

एक ओर यदि यह बात सत्य है कि समाज शिक्षा को प्रभावित करता है तो दूसरी ओर यह बात भी सत्य है कि शिक्षा समाज के स्वरूप को निश्चित करती है और उसकी सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं आर्थिक स्थिति को प्रभावित करती है। शिक्षा मानव समाज की

आधारशिला है, वह समाज का निर्माण करती है, उसमें परिवर्तन करती है और उसका विकास करती है।

NOTES

1. शिक्षा और समाज की भौगोलिक स्थिति पर नियन्त्रण :

एक युग था जब मनुष्य कों भौगोलिक परिस्थितियों का दास कहा जाता था परन्तु आज मनुष्य शिक्षा के द्वारा अपनी भौगोलिक परिस्थितियों पर नियन्त्रण करने में सफल हो गया है। वे दिन गये जब नदी और पहाड़ हमारे मार्ग में बाधक होते थे। शिक्षा के द्वारा हवाई जहाजों का निर्मा सम्भव हुआ और हवाई जहाजों से उडकर हम नदी और पहाड ही पार नहीं करते अपितु बहुत कम समय में बहुत अधिक दूरी तय करते है। शिक्षा के द्वारा हम हर भौगोलिक परिस्थिति पर नियन्त्रण करने में सफल होते जा रहे हैं।

2. शिक्षा और समाज का स्वरूप :

शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य अपने समाज के, संसार के और इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के बारे में जानकारी प्राप्त करता है। इस ज्ञान के आधार पर ही वह अपने जीवन के उद्देश्य निश्चित करता है और इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए वह भिन्न–भिन्न समाजों का निर्माण करता है। सच्चा वेदान्ती मनुष्य–मनुष्य में तो क्या संसार की किन्दी दो वस्तुओं में भी भेद नहीं करता, वह सबकों ब्रह्ममय देखता है। लेकिन ईश्वर विमुख व्यक्ति भौतिक पैमाने पर ही सब कुछ कसता है। और मनुष्य–मनुष्य में अनेक प्रकार के भेद करता है। इस प्रकार भिन्न–भिन्न विचारधाराओं के व्यक्तियों के समाज का स्वरूप भिन्न–भिन्न होता है। शिक्षा एक ओर समाज के स्वरूप की रक्षा करती है और दूसरी ओर उसमें आवश्यक परिवर्तन करती है।

3. शिक्षा और समाज की संस्कृति :

प्रत्येक समाज अपने सदस्यों में अपनी संस्कृति का संक्रमण शिक्षा के द्वारा ही करता है। इस प्रकार शिक्षा किसी समाज की संस्कृति का संरक्षण करती है। जब मनुष्य शिक्षित हो जाता है तो वह अपने अनुभवों के आधार पर अपनी संस्कृति में परिवर्तन करता है। इस प्रकार शिक्षा समाज की संस्कृति में विकास करती है। शिक्षा के अभाव में संस्कृति के विकास की कल्पना नहीं की जा सकती।

4. शिक्षा और समाज की धार्मिक स्थिति :

हम यह देख रहे है कि कोई समाज अपनी शिक्षा में धर्म विशेष की शिक्षा का विधान करता है, कोई इस क्षेत्र में उदार दृष्टि अपनाता है और संसार के भिन्न–भिन्न धर्मो की शिक्षा

NOTES

का विधान करता है और कोई समाज अपनी शिक्षा में धर्म को स्थान नहीं देता। परिणामस्वरूप पहले प्रकार के समाजों में धार्मिक कट्टरता पाई जाती है, दूसरे प्रकार के सामाजों में धार्मिक उदारता पाई जाती है। और तीसरे प्रकार के समाजों में अब एक ओर भौतिक विज्ञानों की शिक्षा से धार्मिक कूपमंडूकता एवं अन्धविश्वासों का अन्त होने लगा है और दूसरी ओर बढती हुई सामाजिक अराजकता से मनुष्य अपनी शिक्षा को वास्तविक धर्म पर आधारित करने की ओर उन्मुख होने लगा है। शिक्षा के अभाव में लोग धर्म के वास्तविक स्वरूप को समझ ही नहीं सकते।

5. शिक्षा और समाज की राजनैतिक स्थिति :

शिक्षा से मनुष्य के ज्ञान में वृद्धि होती है। और उसके आचरण को निश्चित दिशा दी जाती है। शिक्षा के द्वारा ही विचार करने एवं सत्य–असत्य में भेद करने की शक्ति का विकास होता है। शिक्षा के द्वारा ही समाज में राजनैतिक जागरूकता आती है। और व्यक्ति अपने अधिकार व कर्तव्यों से परिचत होते हैं।

6. शिक्षा और समाज की आर्थिक स्थिति :

एक युग था जब शिक्षा के द्वारा मनुष्य में केवल मानवीय गुणों का विकास किया जाता था। परन्तु रोटी, कपडे, मकान की समस्या को सुलझाने वाली शिक्षा उस समय नहीं दी जाती थी। ऐसा नहीं कहा जा सकता यह हो सकता है कि उस समय इसके लिए उचित विद्यालयों की स्थपना न की गई हों परन्तु परिवार व समुदायों में यह शिक्षा बराबर चलती रही होगी। अन्यथा इस क्षेत्र में विकास कैसे होता।

7. शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन :

यदि एक ओर यह बात सत्य है कि समाज शिक्षा में परिवर्तन करता है तो दूसरी ओर यह बात भी सत्य है कि शिक्षा द्वारा सामाजिक परिवर्तन होते हैं। शिक्षा द्वारा मनुष्य अपनी जाति की भाषा, रहन–सहन, खान–पान के तरीके व रीति–रिवाज सीखता है और उसके मूल्य एवं मान्यताओं से परिचित होता है। शिक्षा के अभाव में यह सब सम्भव नहीं है सामाजिक क्रान्ति के लिए शिक्षा मूलभूत आवश्यकता होती है।

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि समाज और शिक्षा अन्योन्याश्रित होती है। जैसे किसी समाज की भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृति, धार्मिक, राजनैतिक और आर्थिक स्थिति होती है वैसी ही उसकी शिक्षा होती है। इतना ही नहीं अपितु समाज में किसी प्रकार के सामाजिक

परिवर्तनों के साथ–साथ उसकी शिक्षा में भी परिवर्तन होते चलते है। और जिस समाज में जैसी शिक्षा की व्यवस्था की जाती है वैसी ही उस समाज की भौगोलिक स्थिति पर पकड, और उसके स्वरूप एवं उसकी सांस्कृति, धार्मिक, राजनैतिक और आर्थिक स्थिति में परिवर्तन होने लगता है। सामाजिक परिवर्तन लाने में शिक्षा आधार भूत भूमिका अदा करती है।

NOTES

शिक्षा के सामाजिक आर्थिक कारक (Socio Economic Factors of Education) :

जब धन को किसी काम में इस उद्देश्य से लगाया जाता है कि भविष्य में उससे और अधिक धन प्राप्त हो तो उसे निवेश अथवा विनियोग कहते है शिक्षा के द्वारा व्यक्ति की धनोपार्जन की क्षमता में विकास होता है। जिसका प्रयोग वह अपने भावी जीवन में करता है। इस दृष्टि से शिक्षा में किया गया व्यय अपने में एक विनियोग है।

शिक्षा के व्यय और उसके प्रतिफल पर अनेक अध्ययन किये गये हैं इन अध्ययनों से शिक्षा शास्त्रियों ने अग्रांकित तथ्यों की खोज की है–

1. शिक्षा पर जो कुछ व्यय होता है उसमें बालकों की तत्कालीन आवश्यकताओं की पूर्ति होती है जैसे– एक दूसरे से मिलने के अवसर प्राप्त होना खेल के लिए अवसर प्राप्त होना, सामान्य व्यवहार के अवसर प्राप्त होना आदि। यह शिक्षा का व्यय उपभोगी तत्व कहलाता है।

2. किसी व्यवसाय में अधिक पढ़ा लिखा व्यक्ति कम पढे लिखे व्यक्ति की तुलना में अधिक कुशलता से काम करता है और तदानुकूल अधिक धनोपार्जन करता है। इस प्रकार व्यक्ति की शिक्षा पर जो कुछ भी व्यय होता है उसका उसे प्रतिफल प्राप्त होता है।

3. उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति नये विचारों और साधनों को ग्रहण करने के लिए तत्पर्य रहता है। उसमें नये विचारों और साधनों को भी ग्रहण करने की शक्ति अपेक्षाकृत अधिक होती है परिणाम स्वरूप वह निरन्तर आर्थिक प्रगति करने में सक्षम होता है।

4. गत शताब्दी में ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में बडी प्रगति हुई है आर्थोपार्जन के किसी भी क्षेत्र से इसका सीधा सम्बन्ध है। कृषि सम्बन्धित ज्ञान प्राप्त व्यक्ति उस कृषक की अपेक्षा अधिक उत्पादन करता है। जिसने आधुनिक कृषि सम्बन्धी ज्ञान को प्राप्त नहीं किया है। इसी प्रकार उद्योग के क्षेत्र में विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा का उत्पादन दर से सीधा सम्बन्ध होता है। उद्योगों की सफलता प्रशिक्षित कर्मचारियों,

उच्च शिक्षा प्राप्त इंजीनियरों और प्रोडक्शन मैनेजरों तथा सेल्स मैनेजरों आदि पर निर्भर करती है।

NOTES

5. व्यक्ति की शिक्षा पर किये जाने वाले व्यय से व्यक्ति की स्वयं की आय प्रभावित होती है। हम जानते हैं कि उद्योगों में साधारण प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्ति को कम वेतन मिलता है। जब कि डिप्लोमा प्राप्त व्यक्तियों को उनसे अधिक समय व अधिक धन व्यय कर इंजीनियरिंग की डिग्री प्राप्त करने वाले व्यक्तियों को उनसे भी अधिक वेतन मिलता है।

6. शिक्षा पर व्यय करने से राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है। जो सामान्य, प्रोफेशनल, विज्ञान और तकनीकी शिक्षा पर जो राष्ट्र जितना अधिक व्यय करता है उसकी राष्ट्रीय आय उतनी ही अधिक होती है।

7. इस क्षेत्र की शोधों के परिणामों से यह भी निष्कर्ष निकला है कि जिन राष्ट्रो में शिक्षा का नियोजन करते समय समाज की मॉग और उसके अनुकूल शिक्षा की व्यवस्था करने का जितना अधिक प्रयत्न किया जाता है उसमें उतना ही अधिक प्रतिफल प्राप्त होता है।

इस सब अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुॅचते है कि शिक्षा अपने में एक विनियोग है। परन्त उस पर किये जाने वाले व्यय का प्रतिफल इस बात पर निर्भर करता है कि शिक्षा आयोजक शिक्षा की योजना बनाते समय आय के श्रोतों और समाज के भिन्न–भिन्न क्षेत्रों की मॉगों का कितना ध्यान रखते हैं। और यह प्रतिफल इस बात पर भी निर्भर करता है कि शिक्षा पर किये जाने वाले व्यय का कितना सदुपयोंग होता है। किन्तु हमारे यहॉ इन सब बातों की अभी तक उपेक्षा की जाती रही है। परिणाम स्वरूप हमारे यहॉ शिक्षा पर किये जाने वाले व्यय का प्रतिफल अन्य देशों की अपेक्षाकृत बहुत ही कम था। किन्तु हम देख रहें है कि आज हमारे शिक्षा आयोजक इस बात की ओर जागरूक हो गये हैं तथा शिक्षा के विकास से हमारा आर्थिक विकास हो रहा है। और आर्थिक विकास के साथ हम अपनी शिक्षा व्यवस्था पर अधिक व्यय कर रहे है। अगर यदि यह चक्र इसी तरह चलता रहा तो हम बहुत शीघ्र ही विकसित देशों की कोटि में आ जायेगें।

सामाजिक–आर्थिक कारकों का शिक्षा पर प्रभाव (Impact of Socio-economic Factors on Education) :

शिक्षा एवं सामाजिक आर्थिक कारकों में बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। जहॉ शिक्षा समाज के सामाजिक व आर्थिक विकास को प्रभावित करती है। वहीं सामाजिक आर्थिक कारक इसकी शिक्षा व्यवस्था पर भी बहुत ही महत्वपूर्ण प्रभाव डालते है। शिक्षा पर समाजिक आर्थिक कारकों के प्रभाव को निम्नांकित बिन्दुओ के आधार पर अधिक स्पष्ट किया जा सकता है–

NOTES

(A) शिक्षा पर सामाजिक कारको का प्रभाव :

प्रत्येक समाज अपनी मान्यताओं व आवश्यकताओं के अनुकूल की अपनी शिक्षा की व्यवस्था करता है। और समाज की मान्यता व आवश्यकतायें उसकी भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृति, धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक स्थिति पर निर्भर करती हैं। समाज में होने वाले परिवर्तन ही उसके स्वरूप एवं आवश्यकताओं को बदलते हैं। और उसके अनुसार उसकी शिक्षा का स्वरूप भी बदलता रहता है।

1. समाज की भौगोलिक स्थिति और शिक्षा :

किसी भी समाज का जीवन उसकी भौगोलिक स्थिति से प्रभावित होता है। तब शिक्षा भी उससे प्रभावित होना स्वभाविक है। जिन समाजो की भौगोलिक स्थिति ऐसी होती है कि उसमें मनुष्य को जीवन रक्षा के लिए कडा संघर्ष करना पडता है उनमें अधिकतर व्यक्तियों के पास शिक्षा के लिए न ही समय होता है और न ही धन। परिणाम स्वरूप उनमें जन शिक्षा की व्यवस्था नहीं होती और शिक्षा का क्षेत्र भी सीमित होता है। यह तथ्य भी सर्वविदित है कि जिस देश में प्राकृतिक संसाधन उपलब्ध होते है वैसे ही उद्योग धन्धे पनपते हैं। और इन्हीं के अनुकूल ही वहॉ की शिक्षा की व्यवस्था की जाती है। कृषि प्रधान देशों में सामान्य शिक्षा और उद्योग प्रधान देशों में तकनीकी शिक्षा पर अधिक बल दिया जाता है।

2. समाज की संरचना और शिक्षा :

भिन्न–भिन्न समाजो के स्वरूप भिन्न–भिन्न होते हैं। कुछ समाजों में जातियॉ होती है और जाति भेद भी किन्तु कुछ समाजों में जातियॉ तो होती है परन्तु जाति भेद नहीं। जब कि कुछ समाजों में जातियॉ ही नहीं होती। समाज विशेष की इस संरचना का शिक्षा के स्वरूप पर प्रभाव पडना स्वाभाविक ही है। अपने भारतीय समाज को ही लीजिए तो प्राचीन काल में इसमें कठोर वर्ण व्यवस्था थी। तब सूद्रों को उच्च शिक्षा से वंचित रखा जाता था। और आज जब वर्ण व्यवस्था में विश्वास नहीं किया जाता तो समाज के प्रत्येक वर्ग के लिए शिक्षा के सामान्य अवसर उपलब्ध कराने की नारा बुलन्द है।

3. समाज की संस्कृति और शिक्षा :

NOTES

भिन्न–भिन्न समाजों में संस्कृति की भिन्नता पायी जाती है। परन्तु आधुनिक परिप्रेक्ष्य में किसी समाज की सस्कृति से तात्पर्य उसके रहन सहन, खान–पान की विधियों, व्यवहार प्रतिमानों, आचार–विचार, रीति–रिवाज, कला–कौशल, संगीत, नृत्य, भाषा साहित्य, धर्म दर्शन, आदर्श विश्वास और मूल्यों के उस विशिष्टि स्वरूप से होता है जिसमे उसकी आस्था होती है और जो उसकी अपनी पहचान होते हैं। इसी समाज की शिक्षा पर सर्वाधिक प्रभाव उसकी संस्कृति का ही होता है।

4. समाज की धार्मिक स्थिति और शिक्षा :

यद्यपि धर्म संस्कृति का अंग होता है परन्तु यहॉ इसको अलग से इस लिए लिया गया है क्यों कि प्रारम्भ से ही शिक्षा पर धर्म का प्रभाव सबसे अधिक रहा है। धर्म विशेष को मानने वाले समाजों की शिक्षा में उनके अपने धर्म की शिक्षा को स्थान दिया जाता है। जैसे मुस्लिम राष्ट्रों में –इस्लाम धर्म की शिक्षा इसी प्रकार दूसरे प्रकार के समाजो में इस धर्म विशेष की शिक्षा देना सम्भव नहीं होता क्यों कि उनमे उदार दृष्टिकोण अपनाया जाता है जैसे कि भारत में। कुछ समाजों में धर्म शिक्षा को बिल्कुल स्थान नहीं दिया जाता जैसे कि रूस में।

5. समाज की राजनैतिक स्थिति और शिक्षा :

समाज की राजनैतिक स्थिति भी उसकी शिक्षा प्रणाली को प्रभावित करती है। उदाहरण के लिए एक तन्त्र शासन प्रणाली वाले देशों में शिक्षा के द्वारा अन्धे राष्ट्रभक्त तैयार किये जाते हैं। जब कि लोकतन्त्र शासन प्रणाली वाले देशों में शिक्षा के द्वारा व्यक्ति को स्वतन्त्र चिन्तन और स्वतन्त्र अभिव्यक्ति के लिए तैयार किया जाता है।

6. समाज की आर्थिक स्थिति और शिक्षा :

समाज की आर्थिक स्थिति भी उसकी शिक्षा प्रणाली को प्रभावित करती है। आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न समाजों की शिक्षा बहुउद्देशीय होती है वे अपने प्रत्येक सदस्य के लिए अनिवार्य व निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था करते है तथा जन शिक्षा का प्रसार करते है और इन सब के लिए अनेक साधन जुटाते हैं जैसे कि–संयुक्त राज्य अमेरिका। प्रगतिशील समाज जन शिक्षा व्यवसायिक शिक्षा पर अधिक बल देते हैं जैसे कि–अपना देश भारत।

7. सामाजिक परिवर्तन और शिक्षा :

हम यह जानते है कि समाज परिवर्तनशील है और इसके साथ–साथ वहॉ की शिक्षा व्यवस्था का भी स्वरूप निरन्तर परिवर्तित होता रहता है। अपने भारतीय समाज को ही लीजिए प्राचीन काल में इसकी भौतिक आवश्यकतायें कम थी। और आध्यात्मिक पक्ष प्रबल था। इस लिए शिक्षा के क्षेत्र में धर्म और नीति शास्त्र की शिक्षा पर अधिक बल दिया जाता था। किन्तु वर्तमान समय में इसकी भौतिक आवश्यकतायें बहुत अधिक बढ गयी हैं और इसका अध्यात्मिक पक्ष निर्बल पड गया है। इसी लिए शिक्षा में विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा को अधिक महत्व दिया जाने लगा है।

NOTES

(B) शिक्षा पर आर्थिक कारकों का प्रभाव (Impact of Economic Factors on Education):

किसी भी देश की शिक्षा पर वहॉ की आर्थिक परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है प्रसिद्ध दार्शनिक व अर्थशास्त्रीय बट्रैण्ड रसेल के अनुसार इस प्रभाव को 5 भागों में बॉटा जा सकता है।

1. किसी राष्ट्र के शैक्षिक विचारों को व्यवहारिक रूप देना वहॉ की आर्थिक़ विकास पर निर्भर करता है। उदाहरणार्थ अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था औद्योगिक क्रान्ति के बाद ही सम्भव हो सकी।

2. शिक्षा का उद्देश्य उत्पादन में वृद्धि करना है। उच्च शिक्षा प्राप्त कार्मिक की की क्षमता बढ जाती है। अतः उत्पादन में बृद्धि स्वाभाविक ही है। व्यवसाय तथा विज्ञान की शिक्षा की व्यवस्था और अनुसंधान में व्यय आवश्यक है जिससे उत्पादन में वृद्धि होगी।

3. समाज की सम्पत्ति का वितरण भी समाज की शिक्षा व्यवस्था पर गहरा प्रभाव डालता है। सम्पत्ति के वितरण के आधार पर ही समाज वर्गो में विभाजित होता है और प्रत्येक वर्ग की शिक्षा उस वर्ग की आर्थिक दशा के अनुरूप होती है। उदाहरण स्वरूप पूॅजीवादी और समाजवादी वितरण प्रणाली में शिक्षण व्यवस्था भी भिन्न–भिन्न होती है व्यक्तिगत पूॅजीवाद में शिक्षा के अवसर कुछ व्यक्तियों तक ही सीमित रह जाते हैं जब कि समाजवाद में शिक्षा के अवसर सामन्य जन को भी सुलभ होते हैं।

NOTES

4. धर्मदायों या इन्डावमेन्ट्स का शिक्षा पर असर पडता है। वसियतनामें के द्वारा शिक्षा को धन मिल जाता है। और उससे चलने वाली संस्थाओं पर दानदाता का प्रभाव रहता है। लसेल के मत के अनुसार धर्मदाये सदा प्रगति के विरूद्ध रहते हैं। धार्मिक संस्थायें भी धनियों से दान प्राप्त करने के कारण प्रतिगामी विचारों की पोषक हो जाती है।

5. भूतकाल की किसी विशेष आर्थिक परिस्थिति के कारण विकसित परम्परा का शिक्षा पर प्रभाव पडता है। यौन विषयक परम्परा और अधिक बच्चों को जन्म देने की परम्परा ऐसी परम्परायें है।

इस विवरण से यह स्पष्ट है कि शिक्षा पर सम्पत्ति जनित आर्थिक परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक अर्थ व्यवस्था में कुछ न कुछ दोष होते है। अतः यह कहना की किसी अर्थ व्यवस्था में मनुष्य की सत्तालोलुपता और धनलोलुपता समाप्त हो जायेगी। यह उचित नही है।

यूनिट – 5

प्रजातन्त्र के सन्दर्भ में शिक्षा : Education in relation to Democracy

NOTES

शिक्षा के क्षेत्र में जनतन्त्र के सिद्धान्तों तथा मूल्यों का समावेश अभी कुछ वर्ष पूर्व से ही हुआ है। इस महत्वपूर्ण परिवत्रन का श्रेय अमरीका के प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री जान डीवी को है। उसने बताया कि एक जनतन्त्रीय समाज में ऐसी शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए जिससे प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक कार्यो तथा सम्बन्धों में निजिी रूप से रूचि ले सके। इस शिक्षा को मनुष्य में प्रत्येक सामाजिक परिवर्तनों को दृढ़तापूर्वक स्वीकार करने की सामर्थ्य उत्पन्न करनी चाहिए। डीवी के इस कथन से जनतन्त्र के सिद्धान्तों तथा मूल्यों का प्रयोग शिक्षा के क्षेत्र में किया जाने लगा। परिणामस्वरूप अब दिन प्रतिदिन जन साधारण की शिक्षा का आन्दोलन चारो ओर जोर पकड़ता जा रहा है। जनतन्त्रीय शिक्षा का अर्थ है– शिक्षा से जनतन्त्र की विचारधारा का प्रभाव शिक्षा में जनतन्त्रीय विचारधारा का प्रभाव निम्नलिखित बातों पर ही पड़ा है–

1. सामान अवसर प्रदान करना तथा व्यक्तिगत विभिन्नता का आदर करना (Provision of Equal Opportunities and Recognition of Individual Differences) जनतन्त्र मे प्रत्येक बालक समाज की एक पवित्र व अमूल्य निधि होता है। अतः प्रत्येक बालक को उसकी समस्त शक्तियों के विकास हेतु समाज में अवसर प्रदान किये जा रहे है। समान अवसरों के प्रदान करने का अर्थ सब बालकों को एक जैसे अवसर प्रदान करना नही है। शिक्षा प्रदान करते समय व्यक्तिगत विभिन्नता के सिद्धान्त को दृष्टि में देखते हुए प्रत्येक बालक की रूचियों, योग्यताओं तथा क्षमताओं को ध्यान में रखा जाता है।

2. सार्वभौमिक तथा अनिवार्य शिक्षा : जनतन्त्र में सरकार की बागडोर जनता के हाथ में होती है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को जहॉ एक ओर अपने अधिकारों तथा कर्तव्यों का ज्ञान होना चाहिए वहीं दूसरी ओर उसे पक्षपात तथा अज्ञान के अन्धकार से भी दूर रहना परम आवश्यक है। अतः अब प्रत्येक बालक को बिना किसी भेदभाव के एक निश्चित स्तर तक अनिवार्य रूप से शिक्षा प्राप्त करने की व्यवस्था की जा रही है जिससे वह अपने देश की उचित सरकार का निर्माण कर सके।

3. निःशुल्क शिक्षा (Free Education) : जनतन्त्र सार्वभौमिक तथा अनिवार्य एवं समान अवसरों को प्रदान करने में विश्वास रखता है। इसका अर्थ है किशक्षा में वर्ग भेद

NOTES

अर्थात निर्धन–धनवान के अन्तर का कोई स्थान नहीं है। अतः अब शिक्षा सार्वभौमिक तथा अनिवार्य ही नहीं अपितु निःशुल्क भी होती जा रही है। चूँकि जनतन्त्र में प्रत्येक व्यक्ति का जन्म सिद्ध अधिकार है। इसलिए अमेरिका, रूस, टर्की, फ्रांस एंव जापान आदि सभी जनतन्त्रीय देशों ने प्रत्येक बालक के लिए एक निश्चित स्तर तक की निःशुल्क शिक्षा अनिवार्य कर दी है। साथ ही अब सभी राज्य अन्धे, बहरे, गूंगे, लंगडे, मन्द बुद्धि तथा कुशाग्र बुद्धि एवं मानसिक न्यूनता ग्रस्त सभी प्रकार के बालकों की शिक्षा का उचित प्रबन्ध कर रहे हैं।

4. प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था (Provision of Adult Education) : जनतन्त्रीय विचारधारा को दृष्टि में रखते हुए विभिन्न देशों में प्रौढ़ शिक्षा, स्त्री शिक्षा तथा विकलांग व्यक्तियों की शिक्षा पर बल दिया जा रहा है। इस सम्बन्ध मं विभिन्न राज्यों में रात्रि स्कूलों, सन्डे क्लासेज तथा प्रोढ़ साहित्य की व्यवस्था की जा रही है।

5. बाल केन्द्रित शिक्षा (Child centered Education) : जनतन्त्रीय विचारधारा के प्रभाव से अब बालक के व्यक्तित्व को प्रधानता दी जा रही है। अतः अब ऐसे वातावरण का निर्माण किया जाता है जिसमं रहते हुए बालक के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास हो जाये। दूसरे शब्दों अब शिक्षा बाल केन्द्रित होती जा रहीं हे।

6. शिक्षण पद्धतियाँ (Method of Teaching) : अब बालकों की रूचियाँ एवं शक्तियों का दमन करने वाली रूढ़िगत, सामूहिक शिक्षण प्रणाली समाप्त होती जा रही है। परिणामस्वरूप अब बालकों के मस्तिष्क में ज्ञान बलपूर्वक ठूंसने पर बन नही हदये जाता अपितु जनतन्त्रीय विधियों का प्रयोग करते हुए ऐसे वातावरण का निर्माण किया जाता है जिसमें रहते हुए प्रत्येक बाल ज्ञान की खोज स्वयं कर सके।

7. व्यक्तिगत अध्ययन का महत्व (Importance of Individual Attention) : जनतन्त्रीय विचारधारा से प्रभावित होते हुए अब शिक्षक बालकों के व्यक्तिगत अध्ययन के महत्व को दृष्टि में रखते हुए उनकी पारिवारिक परिस्थितयों, मनोवैज्ञानिक विशेषताओं, पृष्ठभूमि तथा अभिवृत्तियों को समझने का प्रयास कर रहे हैं।

8. सामाजिक क्रियायें (Social Activities) : अब स्कूल में केवल पुस्तकीय ज्ञान पर बल न देते हुए सामाजिक क्रियाओं तथा सामाजिक तत्वों को मुख्य स्थान दिया जाता है जिससे प्रत्येक बालक सामाजिक अनुभव प्राप्त कर सके।

9. छात्र परिषद (Student's Union) : जनतन्त्रीय भावना से प्रेरित होते हुए अब स्कूलों में छात्र संघ अथवा छात्र परिषद आदि को प्रोत्साहन दिया जाता है।

NOTES

10. शिक्षक के व्यक्तित्व का सम्मान (Report of Teacher's Personality) : जनतन्त्रीय व्यवस्था में शिक्षक के व्यक्तित्व को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। अतः जनतन्त्रीय व्यवस्था में शिक्षक के व्यक्तित्व को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है अतः जनतन्त्रीय भावना से प्ररित होते हुए अब शिक्षक से जहॉ एक ओर पाठ्यक्रम के निर्माण में सहयोग प्राप्त किया जा रहा है। वहीं दूसरी ओर उसे शिक्षण कार्य के लिए भी आवश्यकतानुसार शिक्षण विधियों में परिवर्तन करने की स्वतन्त्रता प्रदान की जा रही है या नही अब शिक्षक को अपनी व्यवसायिक कुशलता को बढ़ाने के लिए भी अनेक सुविधायें दी जा रही है।

11. स्कूल प्रशासन (School Administration) : जनतन्त्रीय भावना के प्रभाव से अब स्कूल के संगठन एवं शासन कार्यो में बालकों को भाग लेने के अवसर दिये जा रहे है जिससे उनमें स्वशासन की भावना विकसित हो जाय।

12. बुद्धि परीक्षायें (Intelligence Tests) : अब बालकों की मानसिक योग्यता का मूल्यांकन करने के लिये बुद्धि वरीक्षाओं का प्रयोग किया जा रहा है।

13. बालक का शारीरिक स्वास्थ्य (Physical Health of the Child) : बालक को शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ रखने के लिये अब स्कूल में जहां एक ओर नाना प्रकार के खेलों का प्रबन्ध किया जा रहा है वहीं दूसरे ओर स्कूल के अस्पाताल का डॉक्टर प्रत्येक बालक के शारीरिक स्वास्थ्य की परीक्षा करके उसे पूवे स्वस्थ बनाने के लिये अपना निजी परामर्श भी देता है।

14. स्कूल (School) : जनतन्त्रीय भावना के प्रभाव से अब स्कूल को ऐसा स्थान समझा जाता हैं जहां पर प्रत्येक बालक नागरिकता की शिक्षा के साथ–साथ विश्व बन्धुत्व की शिक्षा प्राप्त करते हुये मानवता के आदर्शो को विकसित कर सकता है। दूसरे शब्दो में अब स्कूल को समाज का लघु रूप माना जाने लगा है।

15. शिक्षा के समस्त साधनों में सहयोग (Co-operation between all the Agencies of Education) : जनतन्त्रीय समाज में शिक्षा के समस्त साधनों में परस्पर सहयोग होता है, अतः शिक्षा अब जनतन्त्र के प्रभाव से परिवार, स्कूल समुदाय तथा धर्म एवं

राजय आदि शिक्षा के समस्त साधनों में सहयोग स्थापित करने के लिए कदम उठाये जा रहे हैं।

NOTES

शिक्षा एवं स्वतन्त्रता : Education and Freedom

शिक्षा तथा अनुशासन का सम्बन्ध सदैव से ही रहा है। एक आदर्शवादी छात्र को निशचित शास्वत मूल्यों को प्राप्त कराने के लिए दबाव डाला जा सकता है। इस सम्बन्ध में वह दण्ड देने से भी नहीं हिचकेगा। किन्तु प्रकृति के द्वारा दिये गये दण्ड तथा अनुशासन को ही नैतिक मान कर मनुष्य के हाथ से इस अधिकार को छीन लेगा। छात्र की भलाई का उद्देश्य दोनों के सम्मुख है। प्रत्येक दर्शन की विचारधारा से जुडे हुए अनुशासन के प्रति भिन्न–भिन्न सिद्धान्त हम देख चुके हैं। किन्तु यहॉ तो हमारा प्रयोजन उदार और उपयोगी शिक्षा में अनुशासन सम्बन्धी समस्या पर स्वतन्त्र रूप से विचार करना है। प्राचीन काल मे ही नहीं अपितु आज भी ''डण्डा छोडो और बालक को खराब करो'' की युक्ति में बहुत लोगों का विश्वास है प्रायः व्यक्तित्व के विकास हेतु आत्म अनुशासन की भावना जागृत करने के लिए सहस्त्रों छात्रों को दुःखी बनाया जा चुका है पर यह बात उचित नहीं है दण्ड देने का कारण भी छात्र को ज्ञात होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं हुआ तो व्यर्थ ही हम उसमें उदासीनता का भाव उत्पन्न कर देंगे।

प्रो0 ह्वाइटहैड का मत है कि स्वतन्त्रता तथा अनुशासन में कोई विरोध नहीं है। दोनों ही बालक के व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक हैं नन महोदय अनुशासन को आवेगों तथा शक्तियों के नियन्त्रण में ही निहित मानते हैं। तथा इसी के द्वारा अधिक कार्य करने की क्षमता प्राप्त होती है। ऐसा मानते है अनुशासन का उद्देश्य भविष्य में सद्गुणों की उत्पत्ति तथा व्यक्तित्व का विकास है। अधिक बन्धनों में बालक के व्यक्तित्व का स्वतन्त्रता पूर्वक विकास सम्भव नहीं है।

राष्ट्रीय एकता का अर्थ और परिभाषा :

राष्ट्रीय एकता का अर्थ है किसी राष्ट्र के सभी व्यक्तियों में ''हम'' की भावना का होना जब किसी राष्ट्र के सभी व्यक्ति, क्षेत्र, जाति और धर्म आदि की भिन्नता होते हुए भी राष्ट्र के सामूहिक हितों के सामने हम अपने वैयस्टिक हितों का त्याग करते हैं। तो हम कहते है कि उस राष्ट्र में राष्ट्रीय एकता है। राष्ट्रीय एकता किसी भी राष्ट्र का मुख्य तत्व होता है। बिना

इसके राष्ट्र की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। इसके अभाव में कोई भी राष्ट्र बहुत दिनों तक जीवित नहीं रह सकता।

NOTES

समान्यता हम देश राज्य और राष्ट्र शब्दों का प्रयोग पर्यायवाची के रूप में करते है। परन्तु यह तीनों सम्प्रत्यय अलग–अलग हैं। देश एक भौगोलि सम्प्रत्यय है, राज्य एक राजनैतिक सम्प्रत्यय है इसके 4 मूल तत्व होते हैं– भौगोलिक क्षेत्र, जनसंख्या, सरकार और प्रभुसत्ता। और राष्ट्र एक भावात्मक सम्प्रत्यय है इसके दो मूल तत्व होते हैं– जनसंख्या और जनसंख्या में हम की भावना यह बात दूसरी है कि प्रत्येक राष्ट्र अपने हितों की रक्षा के लिए राज्य स्थापित करने का प्रयत्न करता है। आज प्रायः सभी राष्ट्रों के अपने राज्य हैं इसी लिए राष्ट्र और राज्य पर्याय हो गये हैं। इस सब चर्चा के बावजूद राष्ट्र के बारे में 4 तथ्य स्पष्ट होते हैं पहला यह कि किसी भी राष्ट्र में भिन्न–भिन्न क्षेत्रों, जाति, भाषा, सांस्कृति और धर्म के लोग होते हैं। दूसरा यह कि इन भिन्नताओं के होते हुए भी किसी राष्ट्र के व्यक्ति सामान्य हित की भावना से जुडे होते हैं। तीसरा यह कि उनके इन समान्य हितों की रक्षा उनका राज्य करता है। चौथा यह कि राज्य यह कार्य तभी कर सकता है जब राष्ट्र के व्यक्ति अपने वयैस्टिक व सामुहिक हितों से अधिक राष्ट्र हित का ध्यान रखें। यदि हम राष्ट्रीय एकता को परिभाषा में निबद्ध करना चाहें तो इस प्रकार हम कह सकते हैं कि–

राष्ट्रीय एकता किसी राष्ट्र के व्यक्तियों के बीच सामान्य हित के आधार पर ''हम'' कि वह भावना है जो उन्हें क्षेत्र, जाति, भाषा, संस्कृति और धर्म की भिन्नता होते हुए भी अपने राष्ट्र से बॉधती है और वे राष्ट्र हित के आगे अपने वैयस्टिक एवं सामुहिक हितों का त्याग करते हैं।

राष्ट्रीयता तथा शिक्षा

(Nationalism and Education)

प्रत्येक राष्ट्र की उन्नति अथवा अवनति इस बात पर निर्भर करती है कि उसके नागरिकों में राष्ट्रीयता की भावना किस सीमा तक विकिसत हुई है। यदि नागरिक राष्ट्रीयता की भावना से ओत–प्रोत है वो राष्ट्र उन्नति के शिखर पर चढता रहेगा। राष्ट्र को सबल तथा सफल बनाने के लिए नागरिकों में राष्ट्रीयता की भावना विकसित करना परम आवश्यक है। राष्ट्रीयता की भावना विकसित करने के लिए शिक्षा की आवश्यकता है। इसीलिए प्रत्येक राष्ट्र अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए अपनी आवश्यकताओं तथा आकांक्षाओं को ध्यान में

रखते हुए अपने नागरिकों में राष्ट्रीयता की भावना के विकास हेतु शिक्षा को अपना मुख्य साधन बना लेता है।

NOTES

राष्ट्रयीता की शिक्षा के लाभ

(Nationalism And Education for Nationalism)

राष्ट्रीयता की शिक्षा के निम्न लाभ है–

1. रानीतिक एकता (Political Unity) : राष्ट्रीयता की शिक्षा से राष्ट्र में राजनीतिक एकता विकास होता है। राजनीतिक एकता का अर्थ है – राष्ट्र में जातीयता, प्रान्तीयता तथा समाज के वर्ग भेदों से ऊपर उठकर राष्ट्र के विभिन्न प्रान्तो, सामाजिक इकाईयों तथा जातियों में एकता का होना। राष्ट्रीयता शिक्षा प्रापत करके राष्ट्र के सभी नागरिक अपने सारे भेद भावों को भूलकर राजनीतिक एकता के सूत्र से बंध जाते है जिससे राष्ट्र दृढ तथा सबल बन जाता है।

2. सामाजिक उन्नति (Social Progress) : राष्ट्र की उन्नति तथा अवनति उसकी सामाजिक स्थिति पर भी बहुत कुछ आधारित होती है। सामाजिक कुरीतियॉ, अन्ध विश्वास तथा दोषपूर्ण रीति रिवाज राष्ट्र की प्रगति में बाधक सिद्ध होते है तथा उसके पतन की ओर एकेल देते हैं राष्ट्रीयता की शिक्षा उक्त सभी दोषों को दूर करके नागरिकों में समानता का ऐसा स्वस्थ वातावरण निर्मित करती है जो राष्ट्र को निर्मल स्वच्छता की ओर ले जाता है।

3. आर्थिक उन्नति (Economic Progress) : राष्ट्रीयता की शिक्षा से राष्ट्र की कला, कारीगर तथा उद्योग धन्धें पनपते हैं। ऐसी शिक्षा को प्राप्त करके राष्ट्र का प्रत्येक नागरिक किसी न किसी धन्धे में काम करते हुए अधिक से अधिक विकास करता है। इस प्रकार राष्ट्रीयता की शिक्षा के राष्ट्र की दिन प्रतिदिन उन्नति होती है। इससे राष्ट्र की निर्धनता दूर हो जाती है। वह शनैः–शनैः धन धान्य से परिपूर्ण होकर समृद्धशाली बनता है।

4. संस्कृति का विकास (Development of Culture) : राष्ट्रीयता की शिक्षा राष्ट्र की संस्कृति का संरक्षण, विकास तथा हस्तान्तरण करती है। यदि राष्ट्रीयता की शिक्षा की व्यवस्था उचित रूप से नहीं की गई तो राष्ट्र की संस्कृति विकसित नहीं होगी। परिणामस्वरूप राष्ट्र उन्नति की दौड़ में पिछड जायेगा।

5. भ्रष्टाचार का अन्त (Eradicaion of Couruption) : राष्ट्रीयता की शिक्षा के द्वारा राष्ट्र में भ्रष्टाचार का अन्त हो जाता है। ऐसी शिक्षा प्राप्त करके सभी नागरिक राष्ट्रीय भावना से ओत प्रोत हो जाते है व निन्दनीय कार्यो को करते हुए डरने लगते हैं।

NOTES

6. स्वार्थ त्याग की भावना का विकास (Development of Self Sacrifice) : राष्ट्रीयता की शिक्षा के द्वारा राष्ट्र के सभी नागरिकों में आत्म त्याग की भावना विकसित हो जाती है। जिसके परिणाम स्वरूप उनकी सभी स्वार्थपूर्ण भावनायें समाप्त हो जाती है तथा वे अपने कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों को पूर्ण निष्ठा के साथ निभाने का प्रयास करते रहते है। इससे राष्ट्र सुखी, उन्नतिशील, शक्तिशाली बन जाता है।

7. राष्ट्रीयता भाषा का विकास (Development of National Language) : प्रत्येक राष्ट्र अपने नागरिकों को किसी भाषा के द्वारा राष्ट्र की सम्पूर्ण विचारधारा तथा साहित्य की शिक्षा प्रदान करके समाज की विभिन्न इकाईयों, राज्यों तथा जातियों एवं प्रजातियों को एकता के सूत्र में बांधने का प्रयास करता है। इससे राष्ट्रीय भाषा का विकास हो जाता है।

राष्ट्रीय एकता के विकास में बाधायें

(Obstacles to Naiton of Integration)

स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पश्चात भारत को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। इन समस्याओं में सबसे गम्भीर समस्या राष्ट्रीय एकता की समस्या है। इस समस्या को सुलझाने के लिए हमें उन सभी बाधाओं को दूर करना आवश्यक है जो इसके रास्ते में वज्र के समान पडी हुई है। मुख्य बाधायें निम्न हैं–

1. जातिवाद
2. साम्प्रदायिकता
3. प्रान्तीयता
4. राजनीतिक दल
5. विभिन्न भाषायें
6. सामाजिक विभिन्नता

7. आर्थिक विभिन्नता

8. नेतृत्व का अभाव

NOTES

9. अनुचित विषय

अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना

अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना से तात्पर्य है कि संसार के प्रत्येक व्यक्ति में प्रेम भाव, भाईचारा, सहयोग के सम्बन्ध हो तथा सम्पूर्ण संसार को व्यक्ति अपना परिवार माने। अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना विश्व बन्धुत्व तथा विश्व कल्याण की भावनाओं पर आधारित है तथा मन ुष्य भाव के कल्याण के बारे में सोचती है।

प्रसिद्ध विद्वान गोल्डस्मिथ ने इस सम्बन्ध में कहा हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय सदभावना एक भावना है जो व्यक्ति को यह बताती है कि यह अपने राज्य का ही नहीं अपितु विश्व का नागरिक हैं।

डॉ. वाल्टर एच.सी. लेन्स के शब्दों में– अन्तर्राट्रीय सदभावना इस ओर ध्यान दिये बिना की व्यक्ति किस राष्ट्रीयता या संस्कृति के है एक दूसरे के प्रति सब जगह उनके व्यवहार का आलोचनात्मक और निष्पक्ष रूपसे निरीक्षण करने और आंकने की योग्यता हैं। ऐसा करने के लिये व्यक्ति को इस योग्य होना चाहिये कि यह सब राष्ट्रीयताओं, संस्कृतियों तथा प्रजातियों को इस भूमण्डल पर रहने वाले लोगों की समान रूप से महत्वपूर्ण विभिन्नताओं के रूप में निरीक्षण कर सकें।

शिक्षा द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना का विकास–

विश्व के सभी विद्वानों, दार्शनिकों, वैज्ञानिकों तथा समाज सुधारकों का यह मानना है कि बालकों विश्वबन्धुत्व की भावना को विकसित करने का कार्य तो अनेक राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के द्वारा हो रहा हैं परन्तु इससे भी अधिक आवश्यकता इस बात की है कि स्वयं प्रत्येक राष्ट्र का निवासी दूसरे राष्ट्र के निवासी की समस्याओं को समझें तथा उनका समाधान करने का अपनी ओर से भरसक प्रयास करें तथा उनमें आपस में भाई–चारे, प्रेम, सहयोग का भावना का विकास हो। इस प्रकार की अन्तर्राष्ट्रीय सदभावना का विकास करने के सबसे आसान व महत्वपूर्ण साधना शिक्षा है। शिक्षा प्रदान करने वाले स्कूल की अपनी एक अलग व्यवस्था व वातावरण होता है तथा स्कूल सबसे अच्छे मूल्यों व नैतिक व सांस्कृतिक तत्वों का प्रतिनिधित्व करता हैं तथा सभ्यता व निष्पक्षता की दृष्टि से अन्य सगंठनों व समूहों से अलग

होता है। यूनेस्कों के द्वारा प्रकाशित टुवर्डस वर्ल्ड अन्डरस्टैडिंग पत्रिका में लिखा गया हैं कि स्कूल आस पास की संस्कृति में निहित सर्वोतम तत्वों को व्यक्त कर सकते है और साधारणतः करते भी है। ये सत्य, ईमानदारी व निष्पक्षता में समाज के सामान्य स्तर सें ऊँचे होने चाहियें और साधणतः होते भी है। वे लोगों के माप दण्डो और मूल्यों को काफी ऊँचे उठाने का प्रयास करते है। इस प्रकार शिक्षा का एक प्राथमिक उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना का विकास करना है।

NOTES

अन्तर्राष्ट्रीय सदभावना विकसित करने के उपाय

1. नवयवको में वैचारिक स्वतन्त्रता की शक्ति का विकास
2. नवयुवको को ज्ञान के प्रयोग का प्रशिक्षण देना
3. राष्ट्र प्रेम का वास्तविक अर्थ का ज्ञान–कराना

शैक्षिक अवसरों की समानता का अर्थ

(Meaning of Edquality of Educational Opportunity)

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमारे देश में समस्त बालक–बालिकाओं के बिना किसी भेदभाव के शिक्षा करना आवश्यक हो गया। बिना किसी भेद भाव के प्रत्येक बालक बालिका को शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर प्रदान करने को है शैक्षिक अवसरों की समानता कहा जाता है। इस सम्बन्ध में शिक्षा आयोग ने कहा है कि शिक्षा का एक महत्वपूर्ण सामाजिक उद्देश्य शैक्षिक अवसरों में समानता पैदा करना है। पिछडी जाति के बालकों या पिछडे वर्गो और प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा बिना किसी भेदभाव के दी जाये जिससे वे अपनी वर्तमान स्थिति में उन्नति कर सकें। सामाजिक न्याय को अपना आदर्श मानने वाले प्रत्येक समाज को शैक्षिक अवसरों की समानता प्रदान करने हेतु व्यवस्था करनी होगी। जिससे सभी वर्गो के बालकों को शिक्षा प्राप्त करने के अवसर में अधिक से अधिक समानता प्राप्त हो सके। कमजोर, पिछडे एवं दलित वर्ग के बालकों को शोषण से बचाने हेतु, उन्हें शैक्षिक अवसरों की समानता प्रदान करना ही सर्वोपरि एवं सर्वप्रमुख साधन है। सामाजिक न्याय की स्थापना करने हेतु भारतीय संविधान में इसकी घोषणा की गई तथा इस सन्दर्भ में कदम भी उठाये गये।

शैक्षिक अवसरों के क्षेत्र में विभिन्नताओं के कारण :

(Causes of Disparties in the field of educational Opportunties)

NOTES

हमारे देश में पाई जाने वाली शैक्षिक विभिन्नताओं के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं–

1. विद्यालयों का अभाव
2. शैक्षिक विकासों में गहन असन्तुलन
3. अभिभावाकों की आर्थिक स्थिति निम्न होना
4. पारिवारिक वातावरण में भिन्नता
5. बालक एवं बालिकाओं की शिक्षा के अन्तर
6. उन्नत एवं पिछडे वगो में मध्य शैक्षिक विकास मे अन्तर

शैक्षिक अवसरों की समानता का अर्थ

(Meaning of Edquality of Educational Opportunity)

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमारे देश में समस्त बालक–बालिकाओं के बिना किसी भेदभाव के शिक्षा करना आवश्यक हो गया। बिना किसी भेद भाव के प्रत्येक बालक बालिका को शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर प्रदान करने को है शैक्षिक अवसरों की समानता कहा जाता है। इस सम्बन्ध में शिक्षा आयोग ने कहा है कि शिक्षा का एक महत्वपूर्ण सामाजिक उद्देश्य शैक्षिक अवसरों में समानता पैदा करना है। पिछडी जाति के बालकों या पिछडे वर्गो और प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा बिना किसी भेदभाव के दी जाये जिससे वे अपनी वर्तमान स्थिति में उन्नति कर सकें। सामाजिक न्याय को अपना आदर्श मानने वाले प्रत्येक समाज को शैक्षिक अवसरों की समानता प्रदान करने हेतु व्यवस्था करनी होगी। जिससे सभी वर्गो के बालकों को शिक्षा प्राप्त करने के अवसर में अधिक से अधिक समानता प्राप्त हो सके। कमजोर, पिछडे एवं दलित वर्ग के बालकों को शोषण से बचाने हेतु, उन्हें शैक्षिक अवसरों की समानता प्रदान करना ही सर्वोपरि एवं सर्वप्रमुख साधन है। सामाजिक न्याय की स्थापना करने हेतु भारतीय संविधान में इसकी घोषणा की गई तथा इस सन्दर्भ में कदम भी उठाये गये।

शैक्षिक अवसरों के क्षेत्र में विभिन्नताओं के कारण :

(Causes of Disparties in the field of educational Opportunties)

NOTES

हमारे देश में पाई जाने वाली शैक्षिक विभिन्नताओं के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं–

7. विद्यालयों का अभाव
8. शैक्षिक विकासों में गहन असन्तुलन
9. अभिभावाकों की आर्थिक स्थिति निम्न होना
10. पारिवारिक वातावरण में भिन्नता
11. बालक एवं बालिकाओं की शिक्षा के अन्तर
12. उन्नत एवं पिछडे वगो में मध्य शैक्षिक विकास मे अन्तर

शैक्षिक अवसरों में असमानता को दूर करने के उपाय :

शैक्षिक अवसरों की विभिन्नताओं को निम्नलिखित उपायों द्वारा दूर किया जा सकता है।

1. जिन स्थानों पर विद्यालय नहीं है वहॉ विद्यालय खोले जायें जिससे उन स्थानों के बालक शिक्षा प्राप्त कर सके।
2. भिन्न–भिन्न भागों में शैक्षिक विकासों के मध्य असंतुलन को समाप्त किया जाये।
3. अभिभावकों की आर्थिक स्थिति में सुधार लाया जाये।
4. बालक एवं बालिकाओं की शिक्षा में अन्तर को समाप्त किया जाये।
5. अन्तर्सास्कृतिक व अन्तर्मूलजातीय शिक्षा को अन्तर्वगीय शिक्षा के नाम से जानना चाहिए। इस शिक्षा के अन्तर्गत जातीय, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक सभी प्रकार के अवरोधों को दूर करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए।
6. अन्तवर्गीय शिक्षा का प्रारम्भ प्राथमिक कक्षाओं से ही प्रारम्भ किया जाना चाहिए। जिससे बालकों में प्रारम्भ से ही विभिन्न तत्वों के बारे में ज्ञान प्राप्त हो सके।

शैक्षिक अवसरो में असमानता का सामाजिक वृद्धि एवं विकास पर प्रभाव :

NOTES

शैक्षिक अवसरों में असमानता सामाजिक वृद्धि एवं विकास को बुरी तरह से प्रभावित करती है। जिसे हम निम्नांकित बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट कर सकते हैं–

1. शैक्षिक अवसरों में असमानता सामाजिक विषमता में वृद्धि करती है।
2. शैक्षिक अवसरों में असमानता देश व समाज के आर्थिक विकास में बाधक है।
3. शैक्षिक अवसरों में असमानता गरीबी और बेरोजगारी को भी बढावा देती है।
4. शैक्षिक अवसरों में असमानता, सामाजिक गतिशीलता में बाधक है।
5. शैक्षिक अवसरों में असामानता देश की औद्योगिक प्रगति में बाधक है।
6. शैक्षिक अवसरों में असमानता प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों के विरूद्ध है।
7. शैक्षिक अवसरों में असमानता राष्ट्रीय प्रगति के लिए उत्पादक नागरिकों के निर्माण में बाधक है।
8. शैक्षिक अवसरों में असमानता के चलते राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण असम्भव है।
9. शैक्षिक अवसरों में असमानता आधुनिक ज्ञानवान समाज के निर्माण में बाधक है।
10. शैक्षिक अवसरों में असमानता देश में आन्तरिक अशान्ति व गृह युद्ध की सम्भावना में वृद्धि करती है।